इकाई – 2

संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्

इकाई की रूपरेखा

2.1 परिचय

2.1.1 रामायणम् (बालकाण्डम्, प्रथम सर्ग)

2.1.2 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय)

2.1.3 रघुवंशम् (द्वितीय सर्ग)

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्

2.3.1 रामायणम् (बालकाण्डम्, प्रथम सर्ग)

2.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय)

2.3.3 रघुवंशम् (द्वितीय सर्ग)

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

2.5 सारांश

2.5.1 रामायणम् (बालकाण्डम्, प्रथम सर्ग)

2.5.2 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय)

2.5.3 रघुवंशम् (द्वितीय सर्ग)

2.6 मुख्य शब्दावली

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.1 परिचय

2.1.1 रामायणम् (बालकाण्डम्, प्रथम सर्ग)

रामायण महर्षि वाल्मीकि की कृति है। इसमें रामकथा आद्योपान्त वर्णित है। इसमें सात काण्ड हैं – बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किन्धाकांड, सुन्दरकांड, युद्धकांड और उत्तरकांड। इसमें लगभग 24 सहस्त्र श्लोक हैं, अतः इसे 'चतुर्विंशति– साहस्त्री संहिता' भी कहते हैं। यह मुख्यतः अनुष्टुप् श्लोकों में है। गायत्री मंच में 24 वर्ण होते हैं, अतः यह मान्यता है कि उनको आधार मानकर 24 हजार श्लोक बनाए गए हैं और प्रत्येक एक हजार श्लोक के बाद गायत्री के नए वर्ण से नया श्लोक प्रारम्भ होता है। रामचरित का सर्वांगपूर्ण वर्णन होने के कारण यह

धार्मिक–ग्रन्थ एवं आचार संहिता माना जाता है। यह परकालीन कवियों, नाटककारों और गद्य लेखकों का उपजीव्य (आधार) काव्य माना जाता है। भाव, भाषा, शैली, परिष्कार और काव्यत्व के कारण रामायण का स्थान भारतीय काव्यों में सर्वोच्च माना जाता है।

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।

तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।। (रामायण, बालकांड 2.26.7)

संस्करण – 1, बम्बई संस्करण (देवनागरी संस्करण) – निर्णय सागर प्रेस, बम्बई में 1902 ई० में प्रकाशित (संपादक के०पी० परब)। यह संस्करण उत्तर तथा दक्षिण भारत में सबसे अधिक प्रचलित एवं प्रामाणिक है। इसकी सबसे प्रसिद्ध टीका 'तिलक' है, जिसे प्रसिद्ध वैयाकरण नागेश भट्ट ने अपने आश्रयदाता राजा 'राम' के नाम से की है। (2) बंगला संस्करण – यह संस्करण जी० गोरेशियो ने (1843–1867 ई०) में प्रकाशित किया था और उसका इटैलियन भाषा में अनुवाद किया था। यूरोप में सर्वप्रथम यही संस्करण छपा था। इसे गौडीय संस्करण भी कहते हैं। (3) पश्चिमोत्तर संस्करण – (काश्मीरी संस्करण) यह संस्करण रिसर्च विभाग, डी०ए०वी० कॉलेज, लाहौर में 1813 में प्रकाशित हुआ। इसके टीकाकार का नाम 'कटक' है। (4) दाक्षिणात्य संस्करण – कुम्भकोणम् (मद्रास) से 1929–30 ई० में प्रकाशित हुई। बम्बई संस्करण में इसमें बहुत कम पाठभेद हैं। बंगला और पश्चिमोत्तर संस्करणों में बहुत पाठभेद हैं। पाठभेद का मुख्य कारण रामायण की मौखिक परम्परा है। अतएव प्रान्तीय भेद आदि के कारण बहुत पाठभेद हो गए।

रामायण का सांस्कृतिक महत्त्व

रामायण न केवल काव्य, महाकाव्य या वीर–काव्य ही है। इसका इससे बहुत अधिक महत्त्व है। यह आर्यों का आचार–शास्त्र एवं धर्मशास्त्र है। यह मानव–जीवन का सर्वांगीण आदर्श प्रस्तुत करता है। यह धार्मिक दृष्टि से प्राचीन संस्कृति, आचार, सत्य, धर्म, व्रत–पालन, विविध यज्ञों का महत्व आदि का पूरा इतिहास प्रस्तुत करता है। सामाजिक दृष्टि से यह पति–पत्नी के सम्बन्ध, पिता–पुत्र के कर्त्तव्य, गुरु–शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्त्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आदर्श पिता–माता–पुत्र–भाई–पति एवं पत्नी का चित्रण, आदर्श गृहस्थ– जीवन की अभिव्यक्ति करता है। इसमें पितृ–भक्ति, पुत्र–प्रेम, भ्रातृ–स्नेह एवं जन– साधारण के सौहार्द का सुन्दर चित्रण है। सांस्कृतिक दृष्टि से यह राम–राज्य का आदर्श, पाप पर पुण्य की विजय, लोभ पर त्याग का प्राबल्य, अत्याचार और अनाचार पर सदाचार की विजय, वानरों में आर्य–संस्कृति का प्रसार, यज्ञादि का महत्व, जीवन में नैतिकता, सत्य–प्रतिज्ञता और कर्त्तव्य के लिए बलिदान का आदर्श प्रस्तुत करता है। राजनीतिक दृष्टि से यह राजा के कर्त्तव्य और अधिकार, राजा–प्रजा–सम्बन्ध, उच्च नागरिकता, उत्तराधिकार–विधान, शत्रु–संहार, पाप–विनाशक, सैन्य–संचालन आदि विषयों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। रामायण भारतीय सभ्यता, नगर ग्रामादि– निर्माण, सेतुबन्ध, वर्णाश्रम–व्यवस्था आदि सांस्कृतिक एवं सामाजिक विषयों पर प्रकाश डालने वाला प्रकाश–स्तम्भ है, जिसके प्रकाश में प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का साक्षात् दर्शन होता है।

2.1.2 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय)

महाभारत का वास्तविक सांस्कृतिक महत्व भगवद् गीता के कारण है। गीता करोड़ों हिन्दुओं के लिए न केवल आचार संहिता है, अपितु वेद के समकक्ष तथा उपनिषदों का सार भूत धर्म ग्रन्थ है। वेद, दर्शन और उपनिषद् ग्रन्थों के मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने जिस गूढ़–गम्भीर तत्वचिन्तन की मीमांसा की है उन सब का निचोड़ गीता में अत्यन्त व्यवस्थित ढ़ंग से संकलित एवं संग्रहीत है। पुरातन भारतीय संस्कृति, दर्शन और शास्त्रों की ज्ञान परंपरा का महाभारत विश्व कोश कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता उस महाभारत का ही नहीं अपितु समग्र भारतीय दर्शन धारा का निष्कर्ष है, इसीलिए गीता की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।

अर्थात् सभी उपनिषदें गौओं के समान है और गोपाल नन्दन श्री कृष्ण उन गौओं को दुहने वाले अर्थात् ज्ञान रूपी क्षीर को धारण करने वाली गो सदृश उपनिषदों के सार सदृश दार्शनिक–ज्ञान रूप दूध का दोहन करने वाले श्रीकृष्ण हैं। दोहन से पूर्व जिस प्रकार बछड़ा गौ के दोहन में साधन बनता है उसी वत्स रूप में अर्जुन हैं जिन्होंने श्रीकृष्ण को ज्ञान देने के लिए बाध्य किया और इस ज्ञान रूप दुग्ध का उपभोग करने वाले विद्वत्जन हैं और यह अमृत के समान गीता का ज्ञान रूप दुग्ध महान् है। उपनिषद सारभूत श्रीमद्भगवद् गीता को इसी कारण शाङ्करवेदान्त की प्रस्थानत्रयी में रखा गया है। प्रस्थानत्रयी के तीनों ग्रन्थ हैं – दशोपनिषद् (शांकर भाष्य युक्त), ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद् गीता। ब्रह्मसूत्र और भगवद् गीता को पाराशर व्यास द्वारा संकलित अथवा रचित माना जाता है। कृष्ण द्वैपायन, पाराशर और वेदव्यास ये भिन्न–भिन्न व्यक्ति हैं अथवा एक ही व्यक्ति के नाम हैं यह ऐतिहासिक दृष्टि से विवाद का विषय है परन्तु भारतीय अनुश्रुति इन्हें एक ही व्यक्ति के नाम मानती है। इसके अनुसार ये वास्तविक नाम कृष्ण है। द्वीप में उत्पन्न होने के कारण और रहने के कारण इन्हें 'द्वैपायन' पराशर ऋषि के पुत्र होने के कारण (मत्स्यगन्धा और ऋषि पराशर के प्रणय विवाह से उत्पन्न) 'पाराशर' और वैदिक के पुत्र होने के कारण (मत्स्यगन्धा और ऋषि पराशर के प्रणय विवाह से उत्पन्न) 'पाराशर' और वैदिक ऋचाओं और मन्त्रों का ऋग्वेद संहिता, यजुर्वेद संहिता, सामवेद संहिता तथा अथर्ववेद संहिता के नाम से व्यास अर्थात् विभाजन करने के कारण ये वेदव्यास कहलाए। इस प्रकार व्यास ने जहां भारत को दर्शन दृष्टि दी, तत्व बोध कराया, चिन्तन सारणि का पथप्रदर्शन किया वहीं उन्होंने भारतीय संस्कृति का विश्वकोश प्राचीन काव्य महाभारत भी दिया तथा अष्टादश पुराणों द्वारा आनुश्रुतिक इतिहास भी समर्पित किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक विद्वान् एवं आलोचक व्यास को एक पदवी मानते हैं और अनेक विद्वानों द्वारा किए गये इस महान् कार्यों को व्यास कृत माना जाता है जो भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के कार्य अथवा रचनाएं हैं। यह एक अलग से विचारणीय विषय है।

श्रीमद्भगवद् गीता की अनुशंसा एवं माहात्म्य प्रदर्शन नामक भाष्य में गूढ़ार्थ दीपिका के प्राक्कथन में आचार्य मधुसूदन सरस्वती कहते हैं कि अर्जुन के प्रतिबोधन के लिए स्वयं भगवान नारायण के द्वारा कही गई तथा प्राचीन मुनि व्यास द्वारा महाभारत के मध्य संकलित अद्वैत दर्शन रूप अमृत की वर्षा करने वाली, अट्ठारह अध्यायों वाली देवी स्वरूपा हे भगवद् गीते ! मैं तुम्हारी उपासना एवं व्याख्यान करता हूँ।

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवतां भगवता नारायणेन स्वयं
व्यासेन ग्रथितां पुराण मुनिना मध्ये महाभारतम्।
अद्वैतामृतवर्षिणी भगवतीमष्टादशाध्यायिनीम्
अम्ब ! त्वामनुसन्द धामि भगवदगीते भवद्वेषिणीम्।।

वस्तुतः गीता में कोई एक दर्शन नहीं है अपितु यह समस्त प्राचीन औपनिषदिक दर्शनों का सार है। सभी आस्तिक दर्शनों में इस ग्रन्थ के वचनों का प्रमाण माना जाता है और लगभग सभी दर्शनों के मूलभूत सिद्धान्त यहां बीज रूप में उपलब्ध हैं। अतः इस प्रकार के उपनिषद् – दर्शन सारभूत गीता ग्रन्थ को आज भारत के सभी न्यायालयों में हिन्दू धर्म के धर्म ग्रन्थ के रूप में शपथ दिलाते समय समक्ष रखा जाता है और इस पर हाथ रख कर शपथ दिलाई जाती है। श्रीमद्भगवद् गीता के महत्व का एक अन्य उदाहरण यह भी है कि श्रीमद्भगवद् गीता के जितने अनुवाद, भाष्य और टीकाएं हुई हैं – उतना भाषान्तर अनुवाद या व्याख्यान विश्व के किसी अन्य ग्रन्थ का नहीं हुआ। भारत की प्रायः सभी भाषाओं में तथा विश्व की विकसित और समुन्नत प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

श्रीमद्भगवद् गीता सरल भाषा में रचित वह धर्मग्रन्थ और दर्शन ग्रन्थ है जिसमें वर्णित विषय को मनुष्य थोड़ा सा अभ्यास करने पर सहज ही समझ सकता है और इसे जीवन में अपना कर परम लक्ष्य तक पहुंच जाता है। ईश्वर के गुण, प्रभाव और रहस्य का ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं होता क्योंकि अन्य ग्रन्थों में कुछ न कुछ सांसारिक विषय मिला रहता है। यद्यपि वेदव्यास की रचना महाभारत को विश्वकोश और संस्कृत साहित्य में रामायण के बाद महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से कथित होने के कारण और यथार्थ दर्शन का उपदेश होने के कारण इस ग्रन्थ को एक अलग ही स्थान प्राप्त है। स्वयं वेदव्यास ऋषि ने इसके माहात्म्य का वर्णन करते हुए कहा है –

गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृताः।।

2.1.3 रघुवंशम् (द्वितीय सर्ग)

कालिदास की शैली

कविता–कामिनी–कान्त कालिदास न केवल संस्कृत–वाङ्मय के, अपितु विश्व– वाङ्मय के मुकुटालंकार हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि बाह्य–जगत् और अन्तर्जगत् की तात्त्विक विधाओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरस पदावली में उनको अनुस्यूत करती है। उनकी कलात्मक तूलिका नीरस में सरसता, कर्कश में कोमलता, कठोर में सुकुमारता, सामान्य में विलक्षणता, दुर्बोध में सुबोधता, काव्य में सर्वात्मकता और प्रसाद में माधुर्य का संचार करती है। उनकी कलात्मक रूचि की छाप पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार काव्य को ध्वन्यात्मक बना देता है। भावों की अगाधता और विविधता उनके काव्याकाश में इन्द्रधनुष की छटा प्रस्तुत करती हैं। उनकी भाषारूपी कालिन्दी और भावरूपी भागीरथी के मध्य सालंकृत–पदावली रूपी सरस्वती संगम का महनीय वैभव उपस्थित करती है। उनकी शैली में दुरूहता में सुबोधता, काव्य में नाटकीयता, नैसर्गिक सुषमा में सालंकरता, सरलता में सरसता, सहज–भावाभिव्यक्ति में कल्पना–प्राचुर्य और श्रृंगार में भी करुण–रसाप्लवन जैसे विरोधी गुणों का समन्वय मिलता है। उनकी शैली में भाषा–सौष्ठव, मनोरम भावाभिव्यक्ति, अलंकारों का सहज–विन्यास, अन्तः और बाह्य प्रकृति का चारु चित्रण, रसों का सुन्दर परिपाक, जीवन–दर्शन की रुचिर स्थापना, विविध–विद्या–निधानता और मनोभावों की मार्मिक अनुभूति मनोज्ञ मणि–कांचन–संयोग उपस्थित करती है। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति उनके काव्य–गौरव को अधिक समुन्नत करती है। इनकी शैली में कहीं उपमाओं का लालित्य है, तो कहीं अर्थान्तरन्यास का अर्थ–गाम्भीर्य; कहीं प्रसाद है तो कहीं माधुर्य; कहीं कला प्रधान है तो कहीं कल्पना।

(क) भाषा–सौष्ठव – कालिदास ने भाव–सौष्ठव आदि के साथ ही भाषा–सौष्ठव, पद –लालित्य एवं प्रांजलता पर भी पूरा ध्यान दिया है। कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी भाषा रसानुकूल होती है। प्रकरण, प्रसंग, पात्र और वर्ण्य– विषय के अनुरूप शब्दावली का संचयन मिलता है। कहीं–कहीं पर शब्द–ध्वनि भाव– ध्वनि की अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार के पद–माधुर्य के कारण उनके काव्य में संगीतात्मकता और लयात्मकता का दर्शन होता है। उदाहरण – स्वरूप कुछ श्लोक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जानकी के करुण–क्रन्दन का क्या ही मार्मिक चित्रण कालिदास ने प्रस्तुत किया है। जानकी के शोक पर संवेदना प्रकट करते हुए मोरों ने नाचना, भ्रमरों ने कुसुम–रसास्वाद, मृगियों ने कुश–चर्वण छोड़ दिया था। इस प्रकार सारे वन में करुण का ही दृश्य उपस्थित था।

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृगां
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव–
मत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि।।

एक वीररस का उदाहरण प्रस्तुत है। इसमें कवि ने किस चातुरी के साथ अनुकूल पदावली के द्वारा युद्ध–चित्रत किया है।

पत्तिः पदातिं रथिनं रथेश–

स्तुरगांसादी तुरगाधिरूढम्।

यन्ता गजस्याभ्यपतद् गजस्थं

तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव युद्धम्।। (रघु० 7–37)

उस युद्ध में सम–बलशालियों के समान शक्तिशालियों का संग्राम हुआ – पैदल से पैदल, रथी से रथी, अश्वारोही से अश्वारोही और गजारूढ़ की भीड़न्त हुई।

इस भाषा–सौष्ठव के उदाहरण पग–पग पर प्राप्य हैं।

(ख) भावाभिव्यक्ति – कालिदास ललित भावों के कवि हैं। उनके काव्यों में कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव–सौन्दर्य पग–पग पर परिलक्षित होता है।

कन्या–सुलभ शालीनता और संकोच का क्या ही सुन्दर वर्णन पार्वती के वर वचन के प्रसंग में मिलता है।

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।

लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।। (कुमार० 6–84)

नारद ने जब वररूप में शंकर का उल्लेख किया तो पिता के समीप बैठी हुई पार्वती शील और संकोच के कारण नीचे मुख किए हुए लीला–कमलों के पत्तों को गिनती रही।

दम्पति के सुन्दर सम्बन्धों एवं समन्वयात्मक संपर्क की अभिव्यक्ति अजविलाप में परिलक्षित होती है। अज के लिए इन्दुमती न केवल गृहिणी थी, अपितु मित्र, सचिव और ललितकलाविद् शिष्या थी। उसका वियोग अज का सर्वस्वहरण है। ऐसा दाम्पत्य– प्रेम दुर्लभ है।

गृहिणी सचिवः सखीं मिथः

प्रियशिष्या ललिते कलाविषौ।

करूणा–विमुखेन मृत्युना

हरता त्वां वद किं न मे ह्रतम्।। (रघु० 8–67)

(ग) रस–परिपाक – कालिदास मूलतः श्रृंगार रस के कवि हैं। संभोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के श्रृंगार के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। करुण रस के भी कतिपय वर्णन अत्यन्त मार्मिक हैं। वीर रस के प्रसंग यद्यपि कम हैं, तथापि उनमें कालिदास की योग्यता किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। अन्य रसों के वर्णन अत्यल्प हैं।

शिव–पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की अविभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है। यदि भागीरथी के लिए समुद्र सर्वस्व है, तो समुद्र के लिए भागीरथी। यही स्थिति शिव और पार्वती के रसात्मक अनुराग की थी।

तं यथात्मसदृशं वरं वधू–

रन्वरज्यत वरस्तथैव ताम्।

सागरावनपगा हि जाह्नवी

सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक्।। (कुमार० 8–16)

संभोग श्रृंगार के एक सुन्दर प्रसंग में कवि ने पार्वती के अधर–क्षत की औषधि शिव–शिरः स्थित चन्द्रकला बताई है।

दष्टमुक्तमघरोष्ठमम्बिका
वेदनाविघुतहस्तपल्लवा।
शीतलेन निरवापयत् क्षणं
मौलिचन्द्रशकलेन शूलिनः।। (कुमार० 8–18)

विप्रलम्भ श्रृंगार का अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं मनोज्ञ वर्णन राम–परित्यक्ता सीता की भाव–विह्णलता में प्राप्त होता है। दुःखातिभार के कारण संज्ञा–शून्य सीता को दुःख का भार इतना दुःखदायी न हुआ, जितना होश में आने पर प्रबोध।

सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं
प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः।
तस्या सुमित्रात्मजयत्नलब्धो
मोहादभूत् कष्टतरः प्रबोधः।। (रघु० 14–56)

(घ) अलंकार–निरूपण – कालिदास के काव्यों में अलंकार–विधान आयास–साध्य न होकर अनायास सिद्ध है। पद–पद पर अनुप्रास, उपमा, रूपक, अर्यान्तरन्यास और उत्प्रेक्षाओं के दर्शन होते हैं। यद्यपि यमक, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा, श्लेष, निदर्शना, एकावली, दृष्टान्त, विरोधाभास, परिणाम आदि अलंकारों के भी सुन्दर प्रयोग मिलते हैं, तथापि आयास–साध्य होने के कारण कवि ने इनको महत्व नहीं दिया है। केवल वाग्वैचित्र्य और पांडित्य–प्रदर्शक चित्रालंकारों का इनके काव्यों में सर्वथा अभाव है।

(1) उपमा कालिदासस्य – उपमा कालिदास का अत्यन्त प्रिय अलंकार है। यह कहना असंगत न होगा कि कालिदास उपमा से अलंकृत है। वह उपमा के बिना जीवित नहीं रह सकते। उनकी उपमाएँ असाधारण और मनोरम होती हैं। उनकी विशेषता यह है कि उनमें लिंग–साम्य, भाव–साम्य और रमणीयता का अनुपम समन्वय है। उनकी उपमाएँ एकांगी न होकर सर्वांगीण और व्यापक हैं। कहीं काव्य–शास्त्रीय, दार्शनिक, व्याकरण से संबद्ध और वेद–विषयक हैं, तो कहीं प्रकृति के विभिन्न रूपों से संबद्ध हैं। कहीं मूर्त की मूर्त से तुलना है तो कहीं मूर्त की अमूर्त से।

कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा की उपमा से 'दीपशिखा कालिदास' हो गए। इन्दुमती–स्वयंवर वर्णन में इन्दुमती की उपमा संचारिणी दीपशिखा से दी गई है। वह जिस–जिस राजा को छोड़कर आगे निकल जाती थी, वह उसी प्रकार विवर्ण एवं विषादाकुल हो जाता था, जैसे संचारिणी दीपशिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राज–प्रसाद अन्धकारावृत हो जाता है। क्या ही मनोरम उपमा है।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ
यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे
विवर्णभावं स स भूमिपालः।। (रघु० 6–67)

कामदेव के विनाश से दुःखित रति की अवस्था वायु से बुझाए हुए दीपक की धूमावृत वर्तिका के तुल्य अन्धकारावृत (विषादमय) थी। यह कवि की सर्वश्रेष्ठ उपमाओं में से एक हैं। इसमें शोकाकुल व्यक्ति का क्या ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

गत एव न ते निवर्तते

स सखा दी इवानिलाहतः।

अहमस्य दशेव पश्य मा–

मविषह्यव्यसनेन धूमिताम्।। (कुमार० 4–30)

(2) **अर्थान्तरन्यास** – कालिदास की उपमाओं में जो भावाभिव्यक्ति और रस–सौन्दर्य मिलता है, उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञान–धारा भी बहती है। कुछ अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में अत्यन्त प्रचलित हो गए हैं। 'अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते'।

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य

हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।

एको हि दोषो गुणसंनिपाते

निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः।। (कुमार० 1–3)

(3) **अन्य अलंकार** – उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, रूपक, विरोधाभास, यमक आदि के भी सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

वर्णन–वैचित्र्य – कालिदास के वर्णनों में वैचित्र्य और वैविध्य दोनों हैं। उन्होंने अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। मनोभावों का विशद वर्णन, प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति, वर्णनों में सजीवता और स्वाभाविकता, भावानुकूल पद–विन्यास, तात्त्विक वर्णनों के साथ व्यंजना वृत्ति का आश्रयण, कला में कल्पना का संयोग और सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति आदि गुण कालिदास के वर्णनों की विशेषताएँ हैं।

सन्ध्याकाल में सूर्यास्त का कितना मनोरम वर्णन है –

संचारपूतानि विगन्तराणि

कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।

प्रचक्रमे पल्लवारागताम्रा

प्रभा पतङ्स्य मुनेश्च धेनुः।। (रघु० 2–15)

छन्दोयोजन – रघुवंश और कुमारसंभव के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कालिदास को छोटे छन्द अधिक प्रिय थे। बड़े छन्दों का प्रयोग सर्गान्त में किया गया है। छोटे छन्दों में भी उपजाति और अनुष्टुप् अतिप्रिय छन्द हैं।

इसके अतिरिक्त, वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, मालिनी, मन्दाक्रान्ता आदि सभी विशिष्ट छन्दों का भरपूर प्रयोग रघुवंश, कुमारसंभव और मेघदूत में प्राप्त होता है।

रघुवंश – सामान्य परिचय

इस महाकाव्य में मनु से लेकर सूर्यवंशी 21 राजाओं के जीवन का वर्णन है। इनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम के जीवन का विशद एवं विस्तृत वर्णन है। सर्गानुसार संक्षिप्त कथा इस प्रकार है – **सर्ग 1** – राजा दिलीप की सन्तानहीनता और सन्तान–प्राप्त्यर्थ कुलगुरु वसिष्ठ के आदेशानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना; **सर्ग 2** – नन्दिनी की सेवा, राजा की परीक्षा, प्रसन्न नन्दिनी द्वारा सन्तान–लाभ का वरदान; **सर्ग 3** – रघु का जन्म विद्याध्ययन, इन्द्र से युद्ध में विजय– प्राप्ति तथा रघु का राज्याभिषेक; **सर्ग 4** – रघु के दिग्विजय का वर्णन,

सर्ग 5 – ब्रह्मचारी कौत्स द्वारा गुरुदक्षिणार्थ 14 करोड़ रुपये की याचना, तदर्थ रघु का कुबेर पर आक्रमण, धन–वृष्टि, प्रसन्न कौत्स द्वारा रघु को पुत्र लाभ का आशीर्वाद, फलस्वरूप पुत्र अज का जन्म, इन्दुमती–स्वयंवर के लिए अज का प्रस्थान; **सर्ग 6** – इन्दुमती– स्वयंवर का वर्णन; **सर्ग 7** – अज–इन्दुमती परिणय, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध और अज की विजय; **सर्ग 8** – अज का राज्याभिषेक, दशरथ–जन्म, इन्दुमती–वियोग और अज का विलाप; **सर्ग 9** – दशरथ का मृगया–वर्णन, श्रवणकुमार की हत्या और दशरथ को शाप–प्राप्ति; **सर्ग 10** – पुत्रेष्टियज्ञ, राम आदि 4 पुत्रों का जन्म; **सर्ग 11** – सीता–स्वयंवर और राम आदि का विवाह; **सर्ग 12** – राम वनवास, सीता–हरण, युद्ध, रावण–वध; **सर्ग 13** – राम का पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्गस्थ स्थलों का विशद वर्णन; **सर्ग 14** – राम राज्याभिषेक, सीता परित्याग; **सर्ग 15** – कुश –लव–जन्म, राम का स्वर्गारोहण; **सर्ग 16** – कुश का राज्याभिषेक; **सर्ग 17** – कुमुद्वती के अतिथि नाम पुत्र होने का वर्णन; **सर्ग 18** – अतिथि के बाद की अनेक पीढ़ियों के राजाओं का वर्णन; अन्तिम **सर्ग 19** – राजा सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण की कामुकता का चित्रण।

''लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति'' (उ०राम० 1) भवभूति की इस उक्ति के अनुसार महाकवि के महत् उद्देश्य की समालोचना तो सामर्थ्य से परे है पर इतना सत्य है कि भारतीय परम्परा व संस्कृति के इतिवृत्त के रूप में महत् तथ्यों एवं ज्वलंत उदाहरणों से युक्त भारतीय जनमानस का चित्रण संस्कृति व चेतना का समुच्चय करते हुए महाकवि ने आत्मिक आदर्श से युक्त चरित्रों की सर्जना कर परिवार समाज और राष्ट्र को वर्चस्वता प्रदान की है जिसके आधार पर रघुवंश एक राष्ट्रीय कृति है।

चरित्र – चित्रण

राजा दिलीप

दिलीप का प्रथम परिचय नृप के रूप में मिलता है। नृप का धर्म है वर्णाश्रम का पालन करते हुए राज्यधर्म का निर्वाह करना। राजा का सृजन ही सबके रक्षार्थ हुआ है अस्तु, ऐसे गुणों से युक्त दिलीप का चरित्र राष्ट्र उन्नायक के रूप में ही चित्रित है।

दिलीप का व्यक्तित्व सर्वाधिक बल और तेज सम्पन्न है।

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना।

स्थितः सर्वोन्नते नौवीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना।। (रघु० 1/14)

चौड़ी छाती, उन्नत स्कंध और लम्बी भुजा से दिलीप राज–कार्यों के लिए शरीर धारण किए हैं।

व्यूढोरस्को वृषस्कंधः शालप्रांशुर्महाभुजः।

आत्मकर्मक्षमं देहं क्षत्रो धर्म इवाश्रितः।। (रघु० 1/12)

वे उसी प्रकार से सूर्यवंश से उत्पन्न हैं यथा क्षीर–समुद्र से चन्द्रमा का उदय।

तदन्वये शुद्धिमति प्रसूतः शुद्धिमत्तरः।

दिलीप शास्त्रज्ञाता थे – शास्त्रों के गहन अध्ययन ने उनके गुणों को और भी अधिक परिष्कृत किया। नृप दिलीप का चरित्र और व्यक्तित्व यदि मनोरम गुणों से युक्त था तो उनका अतिशय गांभीर्य उन्हें असंगतियों से निवारण का सहायक भी था – ठीक उसी प्रकार जैसे सागर में मनोहारिता एवं भयानकता दोनों का ही समावेश रहता है। दिलीप के चरित्र में दोनों विरोधी गुणों के समावेश के कारण प्रजा–जन का स्नेह व सम्मान दोनों ही समान भाव से उन्हें प्राप्त था। स्मृतियों के अनुसार नृप का सम्मान उसके शौर्य, बल और प्रजा–पालन के कारण ही होता था। इस दृष्टि से राजा दिलीप का चरित्र साक्षात् सूर्य के समान था जो सहस्त्रगुणा वृष्टि करने के लिए ही सागर के जल को ग्रहण करता है।

प्रजानामेव भूतयर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।

सहस्त्रगुणमुत्स्त्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।। (रघु० 1/17)

शास्त्रों में तीक्ष्ण बुद्धि रखने वाले दिलीप अपने धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यंचा से प्रजापाली में समर्थ थे। दिलीप के कार्यों को देखकर उनके विचार और धीर–गम्भीर प्रवृत्ति का ज्ञान होता है। संसार के प्रत्येक सुख, धर्म, धन और राज्य का उपयोग दिलीप द्वारा अनासक्त भाव से किया जाता था; क्योंकि वे शास्त्रों में पारंगत थे, ज्ञान के कारण वार्धक्य के गुणों से मंडित थे। इस भाँति भेद भाव रहित प्रज्ञावान् दिलीप समस्त प्रज्ञा के पितातुल्य थे।

सेनापरिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम्।

शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिमौर्वी धनुषि चायता।। (रघु० 1/19)

प्रत्यक्ष है कि ऐसे गुणों से युक्त नृप का शासन अतिविस्तृत होगा। 'रघुवंश' के अनुसार दिलीप का शासन अतिविस्तृत था, उनके राज्य का विस्तार सागर तक था। पूरे साम्राज्य का शासन वे ऐसे सुचारु रूप से करते थे मानों वह एक नगर हो।

तं वेधा विदधे नूनं महाभूतसमाधिना।

तथा हि सर्वे तस्यासन्नपरार्थैकफला गुणाः।। (रघु० 1/29)

इस प्रकार शासित विशाल साम्राज्य में राजा का अनुकरण करने वाली प्रजा थी। धर्म और सुशासन से प्रजा सम्पन्न थी। पुत्र–कामना से वसिष्ठ आश्रम में जाते हुए राजा के प्रति आदर भाव से युक्त ग्रामीण जन ताजा दूध और मक्खन लेकर स्वागतार्थ उपस्थित हुए थे।

दिलीप के चरित्र का दूसरा पक्ष है नृप की विनम्रता। पुत्रकामना से वसिष्ठ– आश्रम में नृप जब जाते हैं तो उनकी विनम्रता के प्रति जागरूकता दर्शनीय है। आश्रम एक ऐसा स्थल है जहाँ सादगी और सरला ही सुशोभित होती है, अतः वहाँ अनावश्यक बाह्य–आडम्बर की कोई उपादेयता नहीं – ज्ञान और सत्ता अपने–अपने स्थान पर ही समादृत होते हैं।

आश्रम में पहुँचने पर राजा महर्षि वसिष्ठ को संध्याकालीन पूजन–अर्चन में तल्लीन पाते हैं। वे प्रतीक्षा करते हैं। यह स्पष्ट ही सम्राट की विनम्रता की अभिव्यक्ति है। महर्षि द्वारा कुशल–क्षेम पूछे जाने पर कहीं भी अपनी अभिव्यक्ति कर अतिशयोक्ति या गर्व का आश्रय नहीं लेते – 'हे गुरो ! राज्य में सातों अंगों (स्वामी, मन्त्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, राज्य–प्रसाद, सेना) में कुशल क्यों न हो, क्योंकि जिसके दैवी (अग्नि, जल, रोग, दुर्भिक्ष, मरण) और मानुषी (ठग, चोर, शत्रु, राजा का कृपापाल, राजा का लोभ) आपत्तियों को नाश करने वाले आप स्वयं विद्यमान है ?

उपपन्नानां ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे।

दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम।। (रघु० 1/60)

दिलीप रघुवंश में अदिव्य चरित्र के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं जो आर्य परम्परा के नियामक तथा आर्य संस्कृति के रक्षक हैं। सत्त्वगुण से युक्त दिलीप का आचरण है। जहाँ वे राजस वृत्ति से वेष्टित हुए हैं वहाँ उन्होंने तप को अंगीकार कर अपना परिमार्जन भी किया है।

राजा दिलीप का चरित्र काव्य के प्रारम्भ में 'स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वी क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना' सदृश है।

रानी सुदक्षिणा

मागधराज–कन्या सुदक्षिणा सम्राट् दिलीप की पत्नी है। 'दिलीप का रनिवास' बहुत बड़ा होने पर भी 'दृढ़चित्त'

सुदक्षिणा और लक्ष्मी (राज्यलक्ष्मी) से ही वह अपने को स्त्रीवाला समझते थे।

कलभवन्तमात्मान मवरोधे महत्यपि।

तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाऽधिपः।। (रघु० 1/32)

वसिष्ठ आश्रम के मार्ग में रथारूढ़ हो जाते हुए ग्रामों, पथों तथा वृक्षों का परिचय रानी सुदक्षिणा को देते हुए जाते हैं।

इससे यह प्रतीति होती है ग्राम, प्रान्तर के जीवन के राजप्रासाद अवस्थिता रानी अपरिचिता है। यही रानी सुदक्षिणा महर्षि वसिष्ठ से पुत्र–प्राप्ति हेतु पाये हुए निर्देशों के अनुसार ही तपोवन के जीवन को ग्रहण करती है जो रानी के चरित्र में श्रद्धा, कष्टसहिष्णुता एवं तप का प्रतीक है। वे पति के साथ ही तपोवन में गो–सेवा के निमित्त सभी कार्यों को स्वयं सम्पन्न करती है। राजप्रासाद के जीवन के पश्चात् सहजता से आश्रम–जीवन को अपना लेना मनस्विता का परिचायक है। कुश ही शय्या, पर्णकुटीवास, तपोवन का जीवन जहाँ वे राज्ञी नहीं, मात्र एक साधिका बन व्रत–निर्वाह करते हुए रहती है। गौ–सेवा में उनकी निष्ठा कवि के शब्दों में 'पतिव्रताओं में अग्रणी राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा ने नंदिनी के खुरों के रखने के पवित्र धूलि वाले मार्ग (तपोवन मार्ग) का उसी भांति अनुसरण किया जैसे मन्वादि स्मृतियाँ वेद–वाक्यों के अर्थों का अनुसरण करती है।'

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसुमपांसुलानां धुरिकीर्तनीया।

मार्गं मनुष्येवर धर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थ स्मृतिरन्वगच्छत्।। (रघु० 2/2)

आस्थावान् रानी के अपने पति नृप दिलीप के प्रति अपरिमित स्नेह है। पति की अनुगामिनी होने के कारण ही वह पति के निकट अत्यधिक श्रद्धा की पात्र हैं। काव्यवर्णित एक दो स्थल विशेष से द्रष्टव्य हैं, जैसे वसिष्ठ आश्रम में पहुँचने पर राजा दिलीप रानी को पहले रथ से उतारते हैं। दोहद–काल में रानी सुदक्षिणा ने जिस वस्तु की इच्छा की उसे दिलीप ने अविलंब मंगवाया। क्योंकि 'नृप दिलीप ने गर्भिणी सुदक्षिणा को रत्नां की निधि रखने वाली पृथ्वी तथा भीतर में छिपी हुई अग्नि को रखने वाले शमीवृक्ष को भाँति और अन्तः सलिला सरस्वती के समान समझा।'

निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्।

नदीमिवान्तः सलिलां सरस्वतीं नृपः ससत्त्वां महिषीममन्यत्।। (रघु० 3/9)

फलतः प्रियानुरागी नृप ने कुशल–वैद्यों द्वारा रानी के उपचार का प्रबंध किया।

'अखंडितं प्रेम लभस्व पत्युः' का आशीष वयस्क महिलाओं द्वारा सद्यः विवाहिता को दिया जाता है – वह मानों सुदक्षिणा ने पूर्णरूपेण प्राप्त कर लिया था। स्त्री रत्न होती है रत्नस्वरूपा ही सुदक्षिणा पति के निकट थी जो स्वयं उसके गुणों का परिचायक है। नारी का मातृरूप सदा से श्लांघनीय रहा है – वंश क्रम की रक्षिका और पितृऋण से मुक्त करवाने वाली होने के कारण आर्यनारी का स्थान श्रद्धास्पद रहा है।

(पूर्वेषामृणनिर्मोक्ष साधनम्।। 10.2)

इस दृष्टि से सुदक्षिणा अर्चिता, साथ ही आर्य संस्कृति की पोषिका है।

2.2 इकाई के उद्देश्य

रामायण के बालकाण्ड (प्रथम सर्ग) की कथावस्तु से अवगत हो पाएंगे;

रामायण के सांस्कृतिक महत्त्व का विश्लेषण कर पाएंगे;

श्रीमद्भगवद्गीता के महत्त्व को समझ पाएंगे;

श्रीमद्भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोग की समीक्षा कर सकेंगे;

रघुवंश की काव्यगतविशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.3 संस्कृत ग्रन्थानुशीलनम्

2.3.1 रामायणम् (बालकाण्डम्, प्रथम सर्ग)

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।

नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्।।1।।

तपस्या और स्वाध्याय (वेदपाठ) में निरत और बोलने वालों में श्रेष्ठ, श्रीनारद मुनि जी से वाल्मीकि जी ने पूछा।1।

कोन्वस्मिन्सांप्रतं लोके गुणवान्कश्च वीर्यवान्।

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।2।।

चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।

विद्वान्कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।।3।।

आत्मवान्को जितक्रोधो द्युतिमान्कोऽनसूयकः।

कस्य विभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे।।4।।

इस समय इस संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ (किये हुए उपकार को न भूलने वाले), सत्यवादी, दृढ़व्रत, अनेक प्रकार के चरित्र करने वाले, प्राणीमात्र के हितैषी, विद्वान्, समर्थ, अति दर्शनीय, धैर्यवान्, क्रोध को जीतने वाले, तेजस्वी ईर्ष्या–शून्य और युद्ध में क्रुद्ध होने पर देवताओं को भी भयभीत करने वाले, कौन है। 2, 3, 4।

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।

महर्षे त्वं समर्थोऽसिज्ञातुमेवंविध नरम्।।5।।

हे महर्षे ! यह जानने का मुझे बड़ा चाव है (उत्कृष्ट इच्छा है) और आप इस प्रकार के पुरूष को जानने में समर्थ हैं अर्थात् ऐसे पुरुष को बता भी सकते हैं।5।

श्रुत्वा चैतत्त्रिलोकज्ञो वाल्मीकेर्नारदो वचः।

श्रूयतामिति चामन्त्र्य प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्।।6।।

यह सुन, तीनों लोकों को (भूत, भविष्य और वर्तमान वृत्तान्त जानने वाले देवर्षि नारद प्रसन्न हुए और कहने लगे।6।

वहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।

मुने वक्ष्याम्यहं बुद्धवा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः।।7।।

हे मुनि ! आपने जिन गुणों का बखान किया है, वे सब दुर्लभ हैं, किन्तु हम अपनी समझ से ऐसे गुणों से युक्त पुरुष को बतलाते हैं, सुनिये।7।

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।

नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान्धृतिमान वशी।।8।।

महाराज इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न श्रीरामचन्द्र जी को सब जन जानते हैं। वे नियतस्वभाव (मन को वश में रखने वाले), बड़े बली, अति तेजस्वी, आनन्दरूप, सब के स्वामी।8।

बुद्धिमान्नीतिमान् वाग्मी श्रीमांशत्रुनिबर्हणः।

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।।9।।

महोरस्को महेष्वासो गूढचत्रुररिंदमः।

आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।।10।।

सवर्ज्ञ, मर्यादावान्, मधुरभाषी, श्रीमान्, शत्रुनाशक, विशाल कंधे वाले और गोल तथा मोटी भुजाओं वाले, शङ्ख के समान गर्दन पर तीन रेखा वाले, बड़ी ठुड्डी (ठोढ़ी) वाले, चौड़ी छाती वाले और विशाल धनुषधारी हैं। उनकी गर्दन की हड्डियाँ (हसुली हड्डियाँ) मांस से छिपी हुई हैं, उनकी दोनों भुजाएँ घुटनों तक लटकती हैं। उनका सिर और मस्तक सुन्दर है और वे बड़े पराक्रमी हैं।9, 10।

समः समविभक्ताङ्ग स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।

पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवांशुभलक्षणः।।11।।

उनके समस्त अंग न बहुत छोटे हैं और न बहुत बड़े (जो अंग जितना लम्बा या छोटा होना चाहिए वह उतना लम्बा या छोटा है। उनके शरीर का चिकना सुन्दर रंग है। वे प्रतापी या तेजस्वी हैं। उनकी छाती मांसल है (अर्थात् हड्डियाँ नहीं दिखलाई पड़ती), उनके दोनों नेत्र बड़े हैं, सब अंग प्रत्यंग सुन्दर हैं और वे सब शुभ लक्षणों से युक्त हैं।11।।

धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रतः।

यशस्वी ज्ञानसंपन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्।।12।।

वे शरणागत की रक्षा करना, इस अपने धर्म को निभाने वाले हैं। प्रतिज्ञा के दृढ़ (वादे के पक्के), अपनी प्रजा (रियाया) के हितैषी, अपने आश्रितों पर ध्यान रखने वाले हैं।12।

प्रजापतिसमः श्रीमान्धाता रिपुनिषूदनः।

रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।।13।।

रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता।

वेद–वेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः।।14।।

वे ब्रह्मा के समान प्रजा के रक्षण करने वाले, अति शोभावान्, सब के पोषक, शत्रु का नाश करने वाले अर्थात् वेदद्रोही और धर्मद्रोही जो उनके शत्रु हैं उनका नाश करने वाले, धर्म–प्रवर्तक, स्वधर्म और ज्ञानी जन के रक्षक हैं। वेद–वेदाङ्ग के तत्त्वों को जानते वाले तथा धनुविद्या में अति प्रवीण हैं। 13, 14।

सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान्प्रतिभानवान्।

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।।15।।

वे सब शास्त्रों के तत्त्वों को भली भांति जानने वाले, अच्छी स्मरणशक्ति (याददाश्त) वाले, अच्छी स्मरणशक्ति

(याददाश्त) वाले, महा प्रतिभाशाली, सर्वप्रिय, परमसाधु, कभी दैन्य प्रदर्शित न करने वाले अर्थात् बड़े गम्भीर और लौकिक तथा अलौकिक क्रियाओं में कुशल हैं।15।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।

आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः।।16।।

जिस प्रकार सब नदियाँ समुद्र तक पहुँचती हैं, उसी प्रकार सज्जन जन उन तक सदा पहुँचते हैं अर्थात् क्या अरूत्राभ्यास समय, क्या भोजन–काल में, उन तक अच्छे लोगों की पहुँच सदा रहती है। अच्छे लोगों के लिए उनके पास जाने की मनाही नहीं है। वे परम श्रेष्ठ हैं, वे सबको अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु–पक्षी, जो कोई उनका हो, उसको समान दृष्टि से देखने वाले हैं और सदा प्रियदर्शन हैं।16।

स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः।

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।।17।।

विष्णुना सुदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः।

कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः।।18।।

वे सब गुणों से युक्त कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले हैं। वे गम्भीरता में समुद्र के समान, धैर्य में हिमालय की तरह पराक्रम में विष्णु की तरह, प्रियदर्शनत्व में चन्द्रमा की तरह, क्रोध में कालाग्नि के समान और क्षमा करने में पृथिवी के समान हैं।17, 18।

धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः।

तमेवंगुणसपन्नं रामं सत्यपराक्रमम्।।19।।

वे दान देने में कुबेर के समान हैं अर्थात् जब देते हैं तब अच्छी तरह देते हैं, सत्यभाषण में मानों दूसरे धर्म हैं। ऐसे गुणों से युक्त सत्यपराक्रमी श्री रामचन्द्र जी हैं।19।

ज्येष्ठं श्रेष्ठगुगैर्युक्तं प्रियं दशरथः सुतम्।

प्रकृतीनां हितैर्युक्त प्रकृतिप्रियकाम्यया।।20।।

यौवराज्येन संयोक्तुमैच्छत्प्रीत्या महीपतिः।

तस्याभिषेकसंभारान्दृष्ट्वा भार्याऽथ कैकयी।।21।।

(ऐसे) श्रेष्ठ गुणों से युक्त प्यारे तथा प्रजा के हित को चाहने वाले ज्येष्ठ (पुत्र) श्रीरामचन्द्र जी को, प्रजा की हितकामना के उद्देश्य से, महाराज दशरथ ने प्रीतिपूर्वक युवराज पद देना चाहा। श्रीरामाभिषेक की तैयारियाँ देख, महाराज दशरथ की प्रिय महिषी कैकेयी ने।20, 21।

पूर्वं दत्तवरा देवी वरमेनमयाचत।

विवासनं च रामस्य भरतस्याभिषेचनम्।।22।।

पहले पाये हुए दो वरदान (महाराज दशरथ से) माँगे। एक वर से श्रीरामचन्द्र जी के लिए देश निकाला और दूसरे से (अपने पुत्र) भरत का राज्याभिषेक।22।

स सत्यवचनाद्राजा धर्मपाशेन संयतः।

विवासयामास सुतं रामं दशरथः प्रियम्।।23।।

धर्मपाश से बद्ध, (अर्थात् अपनी बात के धनी होने के कारण) सत्यवादी महाराज दशरथ ने, प्राणों से भी बढ़ कर अपने प्यारे पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को वनगमन की आज्ञा दी।23।

स जगाम वनं वीरः प्रतिमनुपालयन्।

पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात्।।24।।

वीरवर श्रीरामचन्द्र जी पिता की आज्ञा का पालन करने और कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए, पिता की आज्ञानुसार वन को गये।24।

तं व्रजन्तं प्रियो भ्राता लक्ष्मणोऽनुजगाम ह।

स्नेहाद्विनयसम्पन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः।।25।।

माता सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले स्नेह और विलास से सम्पन्न श्रीलक्ष्मण जी (भ्रातृ–स्नेह–वश) श्री रामचन्द्र जी के पीछे हो लिये।25।

भ्रातरं दयितो भ्रातुः सौभ्रात्रमनुदर्शयन्।

रामस्य दयिता भार्या नित्यं प्राणसमा हिता।।26।।

जनकस्य कुले माता देवमायेव निर्मिता।

सर्वलक्षणसंपन्ना नारीणामुत्तमा वधूः।

सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा।।27।।

दोनों भाइयों को जाते देख, श्री राम जी की प्राणों के समान सदा हितैषिणी, राजा जनक की बेटी, साक्षात् लक्ष्मी का अवतार और स्त्रियों के सर्वोत्तम गुणों से युक्त, श्रीसीता भी श्रीरामचन्द्र के साथ वैसे ही गई जैसे चन्द्रमा के साथ रोहिणी।26, 27।

पौररैनुगतो दूरं पित्रा दशरथेन च।

शृंगवेरपुरे सूतं गंगाकूले व्यसर्जयत्।।28।

इन तीनों के पीछे दूर तक महाराज दशरथ और पुरवासी भी गये। शृंगबेरपुर में पहुँच कर, गंगा के किनारे, श्रीराम चन्द्र जी ने (रथ सहित अपने) सारथी (सुमन्त) को भी लौटा दिया।29।

गुहमासाद्य धर्मात्मा निषादाधिपतिं प्रियम्।

गुहेन सहितो रामो लक्ष्मणेन च सीतया।।29।।

ते वनेन वनं गत्वा नदीस्तीर्त्वा बहूदकाः।

चित्रकूटमनुप्राप्य भरद्वाजस्य शासनात्।।30।।

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी निषादों (मल्लाहों) के मुखिया अपने प्यारे गुह से मिले। श्रीरामचन्द्र, श्रीलक्ष्मण, श्रीसीता और गुह बहुत जलवाली अर्थात् बड़ी–बड़ी नदियों को पार कर, अनेक वनों में पैदल घूमे–फिरे और भरद्वाज मुनि के बतलाये हुए चित्रकूट में पहुँचे।29, 30।

रम्यमावसथं कृत्वा रममाणा वने त्रयः।

देवगन्धर्वसंकाशास्तत्र ते न्यवसन्सुखम्।।31।।

उस रम्य स्थान में तीनों (श्रीराम, श्रीलक्ष्मण और सीता) रम गये अर्थात् पर्णकुटी बनाकर रहने लगे, बस गये। देवताओं और गन्धर्वो की तरह वहाँ ये तीनों सुखपूर्वक रहने लगे।31।

चित्रकूटं गते रामे पुत्रशोकातुरस्तदा।

राजा दशरथः स्वर्ग जगाम विलपन्सुतम्।।32।।

श्रीरामचन्द्र जी के चित्रकूट में चले जाने के बाद (उधर) अयोध्या में पुत्र–वियोग में विकल, महाराज दशरथ, हा राम ! हा राम !! कह कर विलाप करते हुए, स्वर्ग को सिधारे।32।

गृते तु तस्मिन्भरतो वसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः।

नियुज्यमानो राज्याय नैच्छद्राज्यं महाबलः।।33।।

(इस प्रकार) महाराज के स्वर्गवासी होने पर, वसिष्ठादि प्रमुख द्विजवर्यों ने, श्रीभरत जी को राजतिलक करना चाहा; किन्तु भरत जी ने यह स्वीकार न किया।33।

स जगाम वनं वीरो रामपादप्रसादकः।

गत्वा तु समहात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।।34।।

और वे पूज्य श्रीरामचन्द्र जी को प्रसन्न कर, मनाने को उनके पास वन में गये। सत्यपराक्रमी, परम महात्मा श्रीरामचन्द्र जी के पास पहुँच कर।34।

अयाचद् भ्रातरं राममार्यभावपुरस्कृतः।

त्वमेव राजा धर्मज्ञ इति रामं वचोऽब्रवीत्।।35।।

उन्होंने अत्यन्त विनय भाव से प्रार्थना की – हे राम ! आप धर्मज्ञ हैं (अर्थात् यह धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि बड़े भाई राज्य नहीं पा सकता) अतः आप ही राजा बनने योग्य हैं।35।

रामोऽपि परमोदारः सुमुखः सुमहायशः।

न चैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामो महाबलः।।36।।

किन्तु श्रीराम जी के अति उदार, अत्यन्त प्रसन्नवदन और यशस्वी होने पर भी, उन महाबली श्रीराम जी ने पिता के आदेशानुकूल, राज्य करना स्वीकार नहीं किया।36।

पादुके चास्य राज्याय न्यासं दत्त्ता पुनः पुनः।

निवर्तयामास ततो भरतं भरताग्रजः।।37।।

राज्य का कार्य चलाने के लिए भरताग्रज श्रीराम जी ने अपनी (प्रतिनिधि रूपी) खड़ाऊँ (भरत को) दी और अनेक वार समझा कर भरत जी को लौटाया।37।

स काममनवाप्यैव रामपादावुपस्पृशन्।

नन्दिग्रामेऽकरोद्राज्यं रामागमनकाङ्क्षया।।38।।

भरत जी अपने मनोरथ को इस प्रकार प्राप्त कर तथा श्रीराम जी के चरणों को स्पर्श कर तथा श्रीरामचन्द्र जी के लौटने की प्रतीक्षा करते हुए, नन्दिग्राम में रह कर, राज्य करने लगे।38।

गते तु भरते श्रीमान्सत्यसंधो जितेन्द्रियः।।

रामस्तु पुनरालक्ष्य नागरस्य जनस्य च।।39।।

तत्रागमनमेकाग्रो दण्डकान् प्रविवेश ह।।

'भरत के लौट जाने पर सत्यप्रतिज्ञ जितेन्द्रिय श्रीमान् राम ने वहाँ पर पुनः नागरिक जनों का आना–जाना देखकर (उनसे बचने के लिये) एकाग्रभाव से दण्डकारण्य में प्रवेश किया।39–40।

प्रविश्य तु महारण्यं रामो राजीवलोचनः।।40।।

विराधं राक्षसं हत्वा शरभंगं ददर्श ह।।

सुतीक्ष्णं चाप्यगस्त्यं च अगस्त्यभ्रातरं तथा।।41।।

'उस महान् वन में पहुँचने पर कमल लोचन राम ने विराध नामक राक्षस को मारकर शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य मुनि तथा अगस्त्य के भ्राता का दर्शन किया।40–41।

अगस्त्यवचनाच्चैव जग्राहैन्द्रं शरासनम्।

खड्गं च परमप्रीतस्तूणी चाक्षयसायकौ।।42।।

'फिर अगस्त्य मुनि के कहने से उन्होंने ऐन्द्र धनुष, एक खंग और दो तूणीर, जिनमें बाण कभी नहीं घटते थे, प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किये।42।

वसतस्तस्य रामस्य वने वनचरैः सह।

ऋषयोऽभ्यागमन् सर्वे वधायासुररक्षसाम्।।43।।

'एक दिन वन में वनचरों के साथ रहने वाले श्रीराम के पास असुर तथा राक्षसों के वध के लिये निवेदन करने को वहाँ के सभी ऋषि आये।43।

स तेषां प्रतिशुश्राव राक्षसानां तदा वने।

प्रतिज्ञातश्च रामेण वधः संयति रक्षसाम्।।44।।

ऋषीणामग्निकल्पानां दण्डकारण्यवासिनाम्।

'उस समय वन में श्रीराम ने दण्डकारण्यवासी अग्नि के समान तेजस्वी उन ऋषियों को राक्षसों के मारने का वचन दिया और संग्राम में उनके वध की प्रतिज्ञा की।44।

तेन तत्रैव वसता जनस्थाननिवासिनी।।45।।

विरूपिता शूर्पणखा राक्षसी कामरूपिणी।

'वहाँ ही रहते हुए श्रीराम ने इच्छानुसार रूप बनाने वाली जनस्थान निवासिनी शूर्पणखा नाम की राक्षसी को (लक्ष्मण के द्वारा उसकी नाक कटाकर) कुरूप कर दिया।45।

ततः शूपर्णखावाक्यादुद्युक्तान् सर्वराक्षसान्।।46।।

खरं त्रिशिरसं चैव दूषणं चैव राक्षसम्।

निजघान रणे रामस्तेषां चैव पदानुगान्।।47।।

'तब शूर्पणाखा के कहने से चढ़ाई करने वाले सभी राक्षसों को और खर, दूषण, त्रिशिरा तथा उनके पृष्ठ पोषक असुरों को राम ने युद्ध में मार डाला।46–47।

वने तस्मिन्निवसता जनस्थाननिवासिनाम्।

रक्षसां निहतान्यासन्सहस्त्राणि चतुर्दश।।48।।

उस वन में बसते हुए, श्रीरामचन्द्र जी ने चौदह हजार जन स्थानवासी राक्षसों को मार डाला।48।

ततो ज्ञातिवधं श्रुत्वा रावणः क्रोधमूर्छितः।

सहायं वरयायास मारीचं नाम राक्षसम्।।49।।

अपनी जाति वालों के वध का (यह) संवाद सुन, रावण बहुत क्रुद्ध हुआ और मारीच नाम राक्षस से सहायता मांगी।49।

वार्यमाणः सुबहुशो मारीचेन स रावणः।

न विरोधो बलवता क्षमो रावण तेन ते।।50।।

मारीच ने रावण को बहुत मना किया (और कहा कि) हे रावण ! अपने से अधिक बलवान् के साथ शत्रुता करनी अच्छी बात नहीं है।50।

अनादृत्य तु तद्वाक्यं रावणः कालचोदितः।

जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदं तदा।।51।।

किन्तु कालवशवर्त्ती रावण ने मारीच की बातों का अनादर किया और उसी समय मारीच को साथ ले वह उस आश्रम में गया जहाँ श्रीरामचन्द्र जी रहते थे।51।

तेन मायाविना दूरमपवाह्य नृपात्मजौ।

जहार भार्या रामस्य गृध्रं हत्वा जटायुषम्।।52।।

मारीच दोनों राजकुमारों को आश्रम से दूर ले गया। उसी समय रावण, जटायु नामक गिद्ध को मार, श्रीरामचन्द्र जी की भार्या श्रीजानकी जी को हर ले गया।52।

गृध्रं च निहतं दृष्ट्वा हृतां श्रुत्वा च मैथिलीम्।

राघवः शोकसंतप्तो विललापाकुलेन्द्रियः।।53।।

जटायु को मृतप्राय दशा में देख और उससे सीता जी का हरण जाना सुन, श्रीरामचन्द्र जी बहुत शोकसन्तप्त हुए और विकल हो उन्होंने विलाप किया।53।

ततस्तेनैव शोकेन गृध्रं दग्ध्वा जटायुषम्।

मार्गमाणो वने सीतां राक्षसं संददर्श ह।।54।।

तत्पश्चात् उस शोक से व्याकुल श्रीराम जी ने, जटायु की दाहक्रिया कर, वन में सीता जी को ढूँढते समय, एक राक्षस को देखा।54।

कबन्धं नाम रूपेण विकृतं घोरदर्शनम्।

तं निहत्य महाबाहुर्ददाह स्वर्गतश्च सः।।55।।

उस राक्षस का नाम कबन्ध था और वह बड़ा विकराल और भयंकर रूप का था। श्रीरामचन्द्र जी ने उसे मार कर, दग्ध किया जिससे वह स्वर्ग गया।55।

स चाऽऽस्य कथयामास शबरीं धर्मचारिणीम्।

श्रमणीं धर्मनिपुणामभिगच्छेति राघवम्।।56।।

स्वर्ग जाते समय कबन्ध ने तस्विनी धर्मचारिणी शबरी के पास जाने के लिए श्रीरामचन्द्र जी कहा।56।

सोऽभ्यगच्छन्महातेजाः शबरीं शत्रुसूदनः।

शबर्या पूजितः सम्यग्रामो दशरथात्मजः।।57।।

शत्रु का नाश करने वाले महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी शबरी के पास गये। शबरी ने दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी का भली भाँति पूजन किया।57।

पम्पातीरे हनुमता संगतो वानरेण ह।

हनुमद्वचनाच्चैव सुग्रीवेण समागतः।।58।।

पंपासर के समीप उनकी भेंट हनुमान नामक बंदर से हुई और हनुमान जी के कहने पर, श्रीरामचन्द्र जी का सुग्रीव से समागम हुआ।58।

सुग्रीवाय च तत्सर्वं शंसद्रामो महाबलः।

आदितस्तद्यथावृत्तं सीतायाश्च विशेषतः।।59।।

पराक्रमी श्रीरामजी ने आदि से लेकर और विशेष कर सीता जी के हर जाने का, सब हाल सुग्रीव से कहा।59।

सुग्रीवश्चापि तत्सर्वं श्रुत्वा रामस्य वानरः।

चकार सख्यं रामेण प्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम्।।60।।

वानर सुग्रीव ने भी श्रीरामचन्द्र जी का सारा वृत्तान्त सुन और अग्नि को साक्षी कर श्रीराम से मैत्री की।60।

ततो वानरराजेन वैरानुकथनं प्रति।

रामायावेदितं सर्वं प्रणयाद्दुःखितेन च।।61।।

तदनन्तर वानरराज ने श्रीरामचन्द्र जी से दुःखी हो बाली के साथ शत्रुता होने का सम्पूर्ण हाल कहा।61।

प्रतिज्ञातं च रामेण तदा वालिवधं प्रति।

वालिनश्च बलं तत्र कथयामास वानरः।।62।।

उसे सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने बाली के वध की प्रतिज्ञा की। तब सुग्रीव ने बाली के बल–पराक्रम का वर्णन किया।62।

सुग्रीवः शङ्कितश्चासीन्नित्यं वीर्येण राघवे।

राघवप्रत्ययार्थं तु दुन्दुभेः कायमुत्तमम्।।63।।

सुग्रीव को श्रीरामचन्द्र जी के अत्यंत बली होने में शंका थी, अतः श्रीरामचन्द्र जी की जानकारी के लिए दुन्दुभी राक्षस के बड़े लंबे शरीर की हड्डियों का।63।

दर्शयामास सुग्रीवो महापर्वतसंनिभम्।

उत्स्मयित्वा महाबाहुः प्रेक्ष्य चास्थि महाबलः।।64।।

ढेर, जो एक बड़े पहाड़ के समान था, सुग्रीव ने लंबी भुजा वाले श्रीरामचन्द्र जी को दिखलाया। उसको देख महा बलवान श्रीरामचन्द्र जी मुस्कराए।64।

पादांगुष्ठेन चिक्षेप संपूर्णं दशयोजनम्।

बिभेद च पुनः तालान्सप्तैकेन महेषुणा।।65।।

और पैर के अँगूठे की ठोकर से हड्डियों के उस ढेर को वहां से दस योजन दूर फेंक दिया। फिर एक ही बाण सात ताल वृक्षों को छेदता हुआ।65।

गिरिं रसातलं चैव जनयन्प्रत्ययं तदा।

ततः प्रीतमनास्तेन विश्वस्तः स महाकपिः।।66।।

पहाड़ फोड़, रसातल को चला गया। तब तो सुग्रीव का संदेह दूर हो गया। तदनन्तर सुग्रीव प्रसन्न हो और विश्वास कर।66।

किष्किन्धां रामसहितो जगाम च गुहां तदा।

ततोऽगर्जद्धरिवरः सुग्रीवो हेमपिग्लः।।67।।

श्रीरामजी को साथ ले गुफा की तरह पर्वतों के बीच बसी किष्किन्धा पुरी को गये। वहाँ पहुँच पीले नेत्रों वाले सुग्रीव ने जोर से गर्जना की।67।

तेन नादेन महता निर्जगाम हरीश्वरः।

अनुमान्य तदा तारां सुग्रीवेण समागतः।।68।।

उस महागर्जन को सुन महाबली बाली बाहर निकाला। (तारा के मना करने पर) बालि ने तारा को समझाया और यह सुग्रीव से आ भिड़ा।68।

निजघान च तत्रैनं शरेणैकेन राघवः।

ततः सुग्रीववचनाद्धत्वा वालिनमाहवे।।69।।

श्रीरामचन्द्र जी ने इसी बीच में एक ही बाण से युद्ध करते हुए बाली को मार डाला। तदनन्तर सुग्रीव के कहने से सुग्रीव से युद्ध करते समय बाली को मार कर।69।

सुग्रीवमेव तद्राज्ये राघवः प्रत्यपादयत्।

स च सर्वान्समानीय वानरान्वानरर्षभः।।70।।

श्री रामचन्द्र जी ने किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को दे दिया। तब वानरों के राजा सुग्रीव ने वानरों को एकत्र कर।70।

दिशः प्रस्थापयामास दिदक्षुर्जनकात्मजाम्।

ततो गृध्रस्य वचनात्संपातेर्हनुमान्बली।।71।।

उनको सीता जी को खोजने के लिए चारों ओर भेजा। तब सम्पाति नामक गृद्ध के बतलाने पर, महाबली हनुमान् ने।71।

शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे लवणार्णवम्।

तत्र लंका समासाद्य पुरीं रावणपालिताम्।।72।।

सौ योजन चौड़े खारी समुद्र को लाँघर रावणपालित लंकापुरी में पहुँच।72।

ददर्श सीतां ध्यायन्तीमशोकवनिकां गताम्।

निवेदयित्वाऽभिज्ञानं प्रवृत्तिं च विनिवेद्य च।।73।।

अशोकवन में श्रीरामचन्द्र जी के ध्यान में मग्न सीता जी को देखा। फिर श्रीरामचन्द्र जी की दी हुई अँगूठी सीता जी को दे दी और श्रीरामचन्द्र जी का सब हाल कह।73।

समाश्वास्य च वैदेहीं मर्दयामास तोरणम्।

पञ्च सेनाग्रगान्हत्वा सप्त मन्त्रिसुतानपि।।74।।

सीता जी को धीरज बँधाया। फिर अशोकवाटिका के बाहर वाले फाटक को तोड़ डाला तथा (रावण के) पाँच सेनापतियों को, सात मंत्रि–पुत्रों को।74।

शूरमक्षं च निष्पिष्य ग्रहणं समुपागमत्।

अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानं ज्ञात्वा पैतामहाद्वरात्।।75।।

और शूरवीर (रावणपुत्र) अक्षयकुमार को पीस कर (अर्थात् मार कर) आत्मसमर्पण किया। हनुमान जी ने ब्रह्मा जी के वरदान के प्रभाव से अपने को ब्रह्मास्त्र से मुक्त जान कर भी।75।

मर्षयन्राक्षसान्वीरो यन्त्रिणस्तान्यदृच्छया।

ततो दग्ध्वा पुरीं लंकामृते सीतां च मैथिलीम्।।76।।

छूटने का कोई यत्न न किया और अपने को रस्सी से बँधवा राक्षसों द्वारा इधर– उधर खिंचवाया। फिर श्री सीता जी के स्थान को छोड़ समस्त लंका को भस्म कर।।76।

रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः।

सोऽभिगम्य महात्मानं कृत्वा रामं प्रदक्षिणम्।।77।

हनुमान जी, श्रीराम जी को यह सुखदायी संवाद सुनाने को लौट आये। श्रीरामचन्द्र जी की परिक्रमा कर, बलवान हनुमान जी ने।77।।

न्यवेदयदमेयात्मा दृष्टा सीतेति तत्त्वतः।

ततः सुग्रीवसहितो गत्वा तीरं महोदधेः।।78।।

सीता जी के देखने का ज्यों का त्यों समस्त वृत्तान्त उनसे कहा। तब सुग्रीव आदि को साथ ले (श्रीरामचन्द्र जी) समुद्र के तट पर पहुँचे।78।

समुद्र क्षोभयामास शरैरादित्यसंनिभैः।

दर्शयामास चात्मानं समुद्रः सरितांपतिः।।79।।

और सूर्य के समान चमचमाते (अर्थात् पैने) बाणों से समुद्र को क्षुब्ध कर डाला। तब नदीपति समुद्र सामने आया।79।

समुद्रवचनाच्चैव नलं सेतुमकारयत्।

तेन गत्वा पुरीं लंका रावणमाहवे।।80।।

समुद्र के कथनानुसार नल ने समुद्र का पुल बाँधा। उस पुल पर हो कर श्रीरामचन्द्र जी लंका पहुँचे और युद्ध में रावण का वध कर।80।

रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत्।

तामुवाच ततो राम परुषं जनसंसदि।।81।।

सीता जी को प्राप्त कर वे बहुत संकोच में पड़ गये। श्रीरामचन्द्र जी ने सब के सामने सीता जी से कठोर वचन कहे।81।

अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती।

ततोअग्निवचनात्सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम्।।82।।

उन कठोर वचनों को न सहकर, सीता जी ने जलती आग में प्रवेश किया। तब अग्निदेव की साक्षी से सीता को निष्पाप जाए।82।

बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः।

कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम्।।83।।

सब देवताओं से पूजित श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हुए। महात्मा श्रीरामचन्द्र जी के इस कार्य से (रावणवध से) तीनों लोकों चर, अचर।83।

सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः।

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्र विभीषणम्।84।।

देव और ऋषि सन्तुष्ट हुए। तदनन्तर राक्षसराज विभीषण लंका के राजसिंहासन पर बिठा।84।

कृतकृत्यस्तदा रामो विज्वरः प्रमुमोद ह।

देवताभ्यो वरं प्राप्त समुत्थाप्य च वानरान्।।85।।

श्रीरामचन्द्र कृतार्थ हुए, निश्चिन्त हुए और हर्षित हुए। देवताओं से वर पा और मृत वानरों को फिर जीवित करा।85।

अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्वृतः।

भरद्वाजाश्रमं गत्वा रामः सत्यपराक्रमः।।86।।

सुग्रीव–विभीषणादि सहित पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या को रवाना हुए। भरद्वाज ऋषि के आश्रम में पहुँच सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी ने।86।

भरतस्यान्तिकं रामो हनूमन्तं व्यसर्जयत्।

पुनराख्यायिकां जल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा।।87।।

हनुमान जी को भरत जी के पास भेजा फिर सुग्रीव से अपना पूर्व वृत्तान्त कहते हुए।87।

पुष्पकं तत्समारुह्य नन्दिग्रामं ययौ तदा।

नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः।।88।

(श्री रामचन्द्र) पुष्पक पर सवार हो, नन्दिग्राम में पहुँचे। अच्छी तरह पिता की आज्ञा पालन करने वाले श्रीरामचन्द्र जी भाइयों सहित जटा विसर्जन कर, अर्थात् बड़े–बड़े बालों को कटवा।88।

रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनरवाप्तवान्।

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।।89।।

और सीता को प्राप्त कर, अयोध्या की राजगद्दी पर बिराजे। श्रीरामचन्द्र जी के राज–सिंहासनासीन होने पर, सब प्रजाजन आनन्दित, सन्तुष्ट और पुष्ट तथा सुधार्मिक हो गये हैं।89।

निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः।

न पुत्रमरणं केचिद्द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।।90।।

उनको न तो कोई शारीरिक व्यथा ही रही है और न मानसिक चिन्ता ही और न दुर्भिक्ष ही का भय रह गया। किसी पुरुष को पुत्रशोक नहीं होता है।90।

नार्यंचाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।

न चाग्निंचं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः।।91।।

और न ही कोई स्त्री कभी विधवा होती है। सब स्त्रियाँ पतिव्रता ही हैं और होंगी। न कभी किसी के घर में आग लगती है और न कोई जल में ज़ूब कर ही मरता है।91।

न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा।

न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा।92।।

इस प्रकार न तो कभी आँधी–तूफान से हानि होती है और न ज्वर आदि महामारी का भय उत्पन्न होता हैं न कोई भूखो मरता है और न किसी के घर चोरी होती है।92।

नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च।

नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा।।93।।

राजधानी और राष्ट्र धन–धान्य से भरे पूरे रहते हैं। सब लोग उसी प्रकार आनन्द सहित दिन बिताते हैं जैसे सत्ययुग में लोग बिताया करते हैं।

अश्वमेघशतैरिष्ट्वा तथा बहुसुवर्णकैः।

गवां कोट्ययुतं दत्त्वा विद्वद्भयो विधिपूर्वकम्।।94।।

श्रीरामचन्द्र जी ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं और ढेरों स्वर्ण का दान दिया है। नारद जी वाल्मीकि जी से कहते हैं, महायशस्वी श्रीरामचन्द्र जी करोड़ों गौएँ देकर बैकुण्ठ में जायँगे।94।

असंख्येयं धनं दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो महायशाः।

राजवंशांशतगुणान्स्थापयिष्यति राघवः।।95।।

महायशस्वी श्रीरामचन्द्र जी ब्राह्मणों को अपरिमित धन देकर, राजवंश की प्रथम से सौ गुनी अधिक उन्नति करेंगे।95।

चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन्स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति।

दशवर्षसहस्त्राणि दशवर्षशतानि च।।96।।

और चारों वर्णों के लोगों को अपने–अपने वर्णानुसार कर्त्तव्य पालन में लगावेंगे। 11000 वर्षों।96।

रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च संमितम्।।

यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।97।।

राज्य कर, श्रीरामचन्द्र जी बैकुण्ठ जायँगे। इस पुनीत, पाप छुड़ाने वाले, पुण्यप्रद, रामचरित को जो पढ़ता है, वह सब पापों से छूट जाता है; क्योंकि यह सब वेदों के तुल्य है।97।

एतदाख्यानमायुष्यं पठन्रामायणं नरः।

सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते।।98।।

आयु बढ़ाने वाली (बालरामायण की) कथा को जो श्रद्धा–भक्ति पूर्वक पढ़ता है, वह अन्त में पुत्र–पौत्रों और नौकर चाकरों सहित स्वर्ग में पूजा जाता है।98।

पठन्द्विजो वागृषभत्वमीया

त्स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।

वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया

ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्।।99।।

इति प्रथमः सर्गः

इस बालरामायण को ब्राह्मण पढ़े तो वह वेद–शास्त्रों में परांगत हो, क्षत्रिय पढ़े तो उसका अच्छा व्यापार चले और शूद्र पढ़े तो उसका महत्त्व अर्थात् अपनी जाति में श्रेष्ठत्व बढ़े या उन्नति हो।99।।

बालकाण्ड का प्रथम सर्ग पूरा हुआ।

(इन 88 श्लोकों के प्रथम सर्ग ही का नाम 'मूल रामायण' या बाल रामायण है। इसका स्वाध्याय प्रायः आस्तिक हिन्दू नित्य किया करते हैं। इसको ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अतिरिक्त शूद्र भी पढ़ सकते हैं, यह बात 99वें श्लोक से स्पष्ट होती है।)

2.3.2 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय)

द्वितीयोऽध्यायः

संजय उवाच

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।

विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।।1।।

संजय बोले – उस प्रकार करुणा से व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रों वाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान् मधुसूदन ने यह वचन कहा।1।

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलंमिदं विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।।2।।

श्रीभगवान् बाले – हे अर्जुन ! तुझे इस असमय में यह मोह किस हेतु से प्राप्त हुआ ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित है, न स्वर्ग को देने वला है और न कीर्ति को करने वाला ही है।2।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।3।।

इसलिये हे अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतप ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिये खड़ा हो जा।3।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।

इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।4।।

अर्जुन बोले – हे मधुसूदन ! मैं रणभूमि में किस प्रकार बाणों से भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के विरूद्ध लडूँगा ? क्योंकि हे अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं।4।

गुरूनहत्वा हि महानुभावां –

छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव

भुंजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्।।5।।

इसलिए इन महानुभाव गुरुजनों को न मारकर मैं इस लोक में भिक्षा का अन्न भी खाना कल्याण कारक समझता हूँ; क्योंकि गुरुजनों को मारकर भी इस लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूँगा।5।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।

यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः।।6।।

हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना – इन दोनों में से कौन–सा श्रेष्ठ है अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे हमारे आत्मीय धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे मुकाबले में खड़े हैं।6।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।।7।।

इसलिये कायरता रूप दोष से उपहत हुए स्वभाव वाला तथा धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।7।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।

अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।।8।।

क्योंकि भूमि में निष्कण्टक, धन–धान्य सम्पन्न राज्य को और देवताओं को प्राप्त होकर भी मैं उस उपाय को नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियों के सुखाने वाले शोक को दूर कर सके।8।।

संजयऽवाच

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप।

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह।।9।।

संजय बोले – हे राजन !! निद्रा को जीतने वाले अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज के प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्रीगोविन्द भगवान् से 'युद्ध नहीं करूँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये।9।

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।

सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः।।10।।

हे भरतवंशी धृतराष्ट्र ! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दोनों सेनाओं के बीच में शोक करते हुए उस अर्जुन को हँसते हुए – से यह वचन बोले।10।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।

गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।11।।

श्री भगवान् बोले, हे अर्जुन ! तू न शोक करने योग्य मनुष्यों के लिए शोक करता है और पण्डितों के – से वचनों को कहता है; परन्तु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।11।

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्।।12।।

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे।12।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति।।13।।

जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है; उस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता।13।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।।14।।

हे कुन्ती पुत्र ! सर्दी–गर्मी और सुख–दुःख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति–विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये हे भारत ! उनको तू सहन कर।14।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।

समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।।15।।

क्योंकि हे पुरुष श्रेष्ठ ! दुःख–सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य होता है।15।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।।16।।

असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का ही तत्त्व तत्त्वज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है।16।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।

विनाशमव्ययस्यास्य न कंचित्कर्तुमर्हति।।17।।

नाश रहित तो तू उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण जगत्दृश्यवर्ग व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।17।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।

अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत।।18।।

इस नाश रहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्मा के ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर।18।

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।

उभौ तो न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।19।।

जो इस आत्मा को मारने वाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।19।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।20।।

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।20।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।

कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्।।21।।

हे पृथापुत्र अर्जुन ! जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है, वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है?।21।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।22।।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।22।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं केल्दयन्त्यापो न शोषयति मारुत।।23।।

इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकते, इसको आग नहीं जला सकती, इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकता।23।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।24।।

क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहने वाला और सनातन है।24।

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।

तस्मादेवं विदित्वैन नानुशोचितुमर्हसि।।25।।

यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकार रहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस आत्मा को उपर्युक्त प्रकार से जानकर तू शोक करने को योग्य नहीं है अर्थात् तुझे शोक करना उचित नहीं है।25।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।

तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि।।26।।

किन्तु यदि तू इस आत्मा को सदा जन्मने वाला तथा सदा मरने वाला मानता हो, तो भी हे महाबाहो ! तू इस प्रकार शोक करने के योग्य नहीं है।26।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।27।।

क्योंकि इस मान्यता के अनुसार जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इससे भी इस बिना उपाय वाले विषय में तू शोक करने को योग्य नहीं है।27।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।।28।।

हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्म से पहले अप्रकट थे और मरने के बाद भी अप्रकट हो जाने वाले हैं, केवल बीच भी अप्रकट हो जाने वाले हैं, केवल बीच में ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थिति में क्या शोक करता है ?।28।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।

आश्र्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।29।।

कोई एक महापुरुष ही इस आत्मा को आश्चर्य की भांति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्व का आश्चर्य की भांति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्य की भांति सुनता है और कोई–कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता।29।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।

तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।30।।

हे अर्जुन ! यह आत्मा सबके शरीरों में सदा ही अवध्य है। इस कारण सम्पूर्ण प्राणियों के लिये तू शोक करने के योग्य नहीं है।30।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।31।।

तथा अपने धर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है अर्थात् तुझे भय नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्त्तव्य नहीं है।31।

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।।32।।

हे पार्थ ! अपने–आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान् क्षत्रियलोग ही पाते हैं।32।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि।।33।।

किंतु यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।33।

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।

सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।।34।।

तथा सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति का भी कथन करेंगे और मानवीय पुरुष के लिये अपकीर्ति मरण से भी बढ़कर है।34।

भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।।35।।

और जिनकी दृष्टि में तू पहले बहुत सम्मानित होकर अब लघुता को प्राप्त होगा, वे महारथी लोग मुझे भय के कारण युद्ध से हटा हुआ मानेंगे।35।

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः।

निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्।।36।।

तेरे वैरी लोग तेरे सामर्थ्य की निन्दा करते हुए तुझे बहुत–से न कहने योग्य वचन भी कहेंगे; उससे अधिक दुःख और क्या होगा ?।36।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।।37।।

या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्ध के लिये निचय करके खड़ा हो जा।37।

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।38।।

जय–पराजय, लाभ–हानि और सुख–दुःख को समान समझकर, उसके बाद युद्ध के लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करने से तू पाप को नहीं प्राप्त होगा।38।

एषा तेऽभिहिता साङ्ख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु।

बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि।।39।।

हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञान योग के विषय में कही गयी और अब तू इसको कर्म योग के विषय में सुन – जिस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मों के बन्धन को भली–भांति त्याग देगा अर्थात् नष्ट कर डालेगा।39।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात।।40।।

इस कर्मयोग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है, बल्कि इस कर्म योग रूप धर्म का थोड़ा–सा भी साधन जन्म–मृत्यु रूप महान् भय से रक्षा कर लेता है।40।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।

बहुशाखा ह्यनन्तश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।।41।।

हे अर्जुन ! इस कर्मयोग में निचयात्मिका बुद्धि एक ही होती है; किन्तु अस्थिर विचार वाले विवेक हीन सकाम मनुष्यों को बुद्धियाँ निचय ही बहुत भेदों वाली और अनन्त होती हैं।41।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।

वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः।।42।।

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।।43।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।44।।

हे अर्जुन ! जो भोगों में तन्मय हो रहे हैं, जो कर्म फल के प्रशंसक वेद वाक्यों में ही प्रति रखते हैं, जिनकी बुद्धि में स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है और जो स्वर्ग से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है – ऐसा कहने वाले हैं, वे अविवेकीजन इस प्रकार की जिस पुष्पित अर्थात् दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहा करते हैं जो कि जन्म रूप कर्म फल देने वाली एवं भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये नाना प्रकार की बहुत–सी क्रियाओं का वर्णन करने वाली है, उस वाणी द्वारा जिनका चित्त हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं; उन पुरुषों की परमात्मा में निचयात्मिका बुद्धि नहीं होती।42–44।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।45।।

हे अर्जुन ! वेद उपर्युक्त प्रकार से तीनों गुणों के कार्य रूप समस्त भोगों एवं उनके साधनों का प्रतिपादन करने वाले हैं; इसलिये तू उन भोगों एवं उनके साधनों में आसक्ति हीन, हर्ष–शोकादि द्वन्द्वों से रहित, नित्य वस्तु परमात्मा में स्थित योग क्षेम को न चाहने वाला और स्वाधीन अन्तःकरण वाला हो।45।

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।

तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।46।।

सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को तत्त्व से जानने वाले ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है।46।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।47।।

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मो के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।47।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।48।।

हे धनंजय ! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है।48।

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।

बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।।49।।

इस समत्व रूप बुद्धि योग से सकाम कर्म अत्यन्त ही निम्न श्रेणी का है। इसलिये हे धनंजय ! तू सम बुद्धि में ही रक्षा का उपाय ढूँढ़ अर्थात् बुद्धि योग का ही आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल के हेतु बनने वाले अत्यन्त दीन हैं।49।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।

तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्।।50।।

समबुद्धियुक्त पुरुष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्व रूप योग में लग जा; यह समत्व रूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है।50।

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।

जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।51।।

क्योंकि समबुद्धि से युक्त ज्ञानी जन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्म रूप बन्धन से मुक्त हो निर्विकार परम पद को प्राप्त हो जाते हैं।51।

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।

तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च।।52।।

जिस काल में तेरी बुद्धि मोह रूप दल दल को भली भाँति पार कर जायेगी, उस समय तू सुने हुए और सुनने में आने वाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगों से वैराग्य को प्राप्त हो जाएगा।52।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।

समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि।।53।।

भाँति–भाँति के वचनों को सुनने से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब परमात्मा में अचल और स्थिर ठहर जायेगी,

तब तू योग को प्राप्त हो जायेगा अर्थात् तेरा परमात्मा से नित्य संयोग हो जायेगा।53।

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत् व्रजेत किम्।।54।।

अर्जुन बोले – हे केशव ! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिर बुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है ? वह स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है ?।54।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।55।।

श्री भगवान् बोले – हे अर्जुन ! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।55।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।56।।

दुःखों की प्राप्ति होने पर जिसके मन में उद्वेग नहीं होता, सुखों की प्राप्ति में जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिर बुद्धि कहा जाता है।56।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।

नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।57।।

जो पुरुष सर्वत्र स्नेह रहित हुआ उस–उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।57।

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।58।।

और कछुवा सब ओर से अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है (ऐसा समझाना चाहिये)।58।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।।59।।

इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण न करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परन्तु उनमें रहने वाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थित प्रज्ञ पुरुष की तो आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।59।

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।।60।।

हे अर्जुन ! आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुष के मन को भी बलात् हर लेती हैं।60।

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।61।।

इसलिये साधक को चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं; उसी की बुद्धि स्थिर हो जाती है।61।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।62।।

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और काम में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है।62।

क्रोधादभ्वति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।63।।

क्रोध से अत्यन्त मूढ़ भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है।63।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।।64।।

परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने वश में की हुई, राग –द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है।64।

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।।65।।

अन्तःकरण की प्रसन्नता होने पर इसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में ही सब ओर हटकर एक परमात्मा में ही भली–भाँति स्थिर हो जाती है।65।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।।66।

न जीते हुए मन और इन्द्रियों वाले पुरुष में निचयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में भावना भी नहीं होती और भावना हीन मनुष्य को शान्ति नहीं मिलती और शान्ति रहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है ?।।66।।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।

तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।।67।।

क्योंकि जैसे जल में चलने वाली नाव को वायु हर लेती है, वैसे ही विषयों में विचलती हुई इन्द्रियों में से मन जिस इन्द्रिय के साथ रहता है वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धि को हर लेती है।67।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।68।।

इसलिये हे महाबाहो ! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है।68।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।।69।।

सम्पूर्ण प्राणियों के लिये जो रात्रि के समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्द की प्राप्ति में स्थित प्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान् सांसारिक सुख की प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं, परमात्मा के तत्त्व को जानने वाले मुनि के लिये वह रात्रि के समान है।69।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं

समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे

स शान्तिमाप्रोति न कामकामी।।70।।

जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहने वाला नहीं।70।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।।71।।

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित हुआ विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्ति को प्राप्त है।71।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।

स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।।72।।

हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्त काल में भी इस ब्राह्मी स्थिति में स्थित होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है।72।

ऊँ तत्सदिति श्रीमद्भगद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः।।

2.3.3 रघुवंशम् (द्वितीय सर्ग)

द्वितीयः सर्गः

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते जायाप्रतिग्रहित गन्धमाल्याम्।

वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच।।1।।

रात के बीत जाने पर प्रातः काल प्रजाओं के पालन करने वाले, यश को ही धन समझने वाले राजा दिलीप ने रानी सुदक्षिणा के द्वारा पूजन में प्राप्त चन्दन और पुष्पों की माला को धारण की हुई, दूध पी चुकने के बाद

जिसका बछड़ा बांध दिया गया है, ऐसी ऋषि वशिष्ठ की नई ब्याई हुई नन्दिनी नाम की गौ को जंगल में चरने के लिये खोल दिया।1।

तस्याः खुरन्यास पवित्रपांसुमपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।

मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।।2।।

पतिव्रताओं में सर्वप्रथम राजा दिलीप की पत्नी सुदक्षिणा ने नन्दिनी के खुरों के रखने से पवित्र धूलि वाले मार्ग का उसी भाँति अनुसरण किया जैसे मन्वादि स्मृतियाँ वेद के अर्थों का अनुसरण करती हैं।2।

निवर्त्त्य राजा दयितां दयालुस्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः।

पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम्।।3।।

दया से युक्त, कीर्त्ति से सुशोभित राजा दिलीप प्यारी पटरानी सुदक्षिणा को लौटाकर जिसके दूध से चारों समुद्र तिरस्कृत हैं ऐसी उस नन्दिनी को, चार समुद्रों को चार स्तनों के रूप में धारण की हुई गौ के रूप में उपस्थित पृथ्वी की भांति रक्षा करने लगे।3।

व्रताय तेनानुचरेण धेनोर्न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः।

न चान्यतस्तस्य शरीररय स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूति।।4।।

गोसेवाव्रत पालन करने के लिये सेवक की भाँति पीछे–पीछे चलने वाले उन 'राजा दिलीप' ने 'सुदक्षिणा' के लौटाने के बाद बचे हुए अनुचर वर्ग को भी पीछे–पीछे आने से रोका। उनको शरीर की रक्षा करने के लिये भी दूसरे पुरुष की आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि 'वैवस्वत' मनु के वंश में उत्पन्न राजा लोग अपने ही पराक्रम से आत्मरक्षा कर लेते थे।4।

आस्वाद्वद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दशनिवारणैश्च।

अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत्।।5।।

चक्रवर्ती वे राजा दिलीप स्वादयुक्त कोमल तृणों के ग्रासों से, शरीर के खुजलाने से, वन के मच्छरों के 'बैठने पर उन्हें' उड़ाने से और बिना रुकावट के स्वच्छन्द फिरने देने से उस 'नन्दिनी' को प्रसन्न करने में तत्पर हुए।5।

स्थित स्थिलामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः।

जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्।।6।।

पृथ्वीपति 'राजा दिलीप' ने उस नन्दिनी की ठहरती हुई की ठहरते हुए, चलती हुई की चलते हुए, बैठती हुई की बैठते हुए, जल पीती हुई की जल पीते हुए, इस प्रकार से छाया की भाँति अनुसरण किया।6।

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं तेजोविशेषानुमितां दधानः।

आसीदनाविष्कृतदानराजिरन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः।।7।।

यद्यपि वे छत्र–चामरादि चिह्नों से भूषित नहीं थे, तथापि अपने तेज की अधिकता से ही जानी जाती हुई राजलक्ष्मी को धारण करते हुये, प्रकट रूप से नहीं दिखाई पड़ रही है मद की रेखा जिसकी, अत एवं भीतर – स्थित है मद की अवस्था जिसकी, ऐसे गजराज की भाँति मालूम पड़ते थे।7।

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशैरधिज्यधन्वा विचचार दावम्।

रक्षाऽपदेशान्मुनिहोमधेनोर्वन्यान्विनेष्यन्निव दुष्टसत्त्वान्।।8।।

लताओं के टेढ़े–टेढ़े सूत के समान शाखादिकों से उलझे हुए सिर के बालों से सुशोभित वे राजा दिलीप प्रत्यन्चा चढ़े हुए धनुष को धारण किए वसिष्ठ महर्षि के होम की सामग्री घृतादि देने वाली नन्दिनी की रक्षा करने के ब्याज से वनैले दुष्ट 'व्याघ्रादि' जीवनों का शासन करने के लिये मानों जंगल में घूम रहे थे।8।

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य पार्श्वद्रमाः पाशभृता समस्य।

उदीरयामासुरिवोन्मदानामालोकशब्दं वयसां विरावैः।।9।।

पार्श्ववर्त्ती अनुचरवृन्द के छोड़ देने पर भी वरुण के समान 'प्रभावशाली' उन राजा दिलीप के आसपास के वृक्षों ने उन्मत्त पक्षियों के शब्दों द्वारा जयशब्द उच्चारण किया ऐसा मालूम पड़ता था।9।

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं तमर्च्यमारादभिवर्त्तमानम्।

अवाकिरन् वाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः।।10।।

वायु से प्रेरित (हिलाई गई) कोमल–कोमल लताओं ने अग्नितुल्य (तेजस्वी), समीप में स्थित, पूज्य उन (राजा दिलीप) के ऊपर फूलों की वर्षा की, जैसे कि नगरवासियों की कन्यायें मंगलार्थक धान के लावों की वर्षा करती थी।

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयाऽऽर्द्रभावमाख्यातमन्तः करणैर्विशंकैः।

विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः।।11।।

धनुष को धारण किये हुए भी राजा दिलीप का शंका से शून्य अपने अन्तःकरणों के द्वारा दया से आर्द्र अभिप्राय मालूम होने से उनके शरीर को विशेष रूप से देखती हुई हरिणियों ने अपनी आँखों का अत्यन्त बड़े होने का फल प्राप्त किया।11।

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः कूजद्भिरापादित वंशकृत्यम्।

शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चैरुद्गीयमानं वनदेवताभिः।।12।।

उन राजा दिलीप ने वायु से भरे हुए छिद्रों के होने से शब्द करते हुए की चकसंज्ञक बांसों से वंशी का कार्य सम्पादन जिसमें हो रहा है, ऐसे लतागृहों में वन की अधिष्ठाती देवियों से ऊँचे स्वरों में गाया जाता अपना यश सुना।12।

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणामनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी।

तमातपक्लान्तमकनातपत्रमाचारपूतं पवनः सिषेवे।।13।।

पहाड़ी झरनों के जलबिन्दुओं से युक्त अत एव शीतल तथा वृक्षों के कुछ–कुछ हिले हुये फूलों के गन्ध को लेता हुआ 'मन्द–मन्द सुगन्धित वायु' व्रत करने से छत्र से रहित अत एव धूप से मुरझाये हुए सदाचार से पवित्र उन राजा दिलीप की सेवा करने लगा।13।

शशाम वृष्टयाऽपि विना दिवागिनरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।

ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने।।14।।

जगत् की रक्षा करने वाले उन राजा दिलीप के वन में प्रवेश करने पर वृष्टि के बिना ही वन की अग्नि शान्त हुई, फल और पुष्पों की वृद्धि अधिक हुई, तथा बनैले जीवों के बीच में कोई, बलवान् 'व्याघ्रादि' अपने से निर्बल किसी 'मृगादि' को नहीं सताने लगा।14।

संचारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।

प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः।।15।।

पल्लव के वर्ण की तरह लाल वर्ण वाली सूर्य की प्रभा और मुनि वसिष्ठ की धेनु ये दोनों, दिशाओं के मध्य भाग को अपने–अपने संचार से पवित्र करके दिन के अन्त (सन्ध्याकाल) में अस्त होने के लिये तथा अपने आश्रम में पहुँचने के लिये उपक्रम करने लगी।15।

तां देवतापित्रतिथिक्रियाऽर्थामन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः।

बभौ च सा तेन सतां मतेन श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना।।16।।

भूलोक के पालन करने वाले राजा दिलीप देवता, पितर और अतिथि लोगों के कार्य (यज्ञ, श्राद्ध भोजनादि) को साधने वाली, उस धेनु के पीछे–पीछे चले और सज्जनों के द्वारा पूजित उनसे युक्त, वह (नन्दिनी) भी सज्जनों के किये गये अनुष्ठान से युक्त श्रद्धा जैसी सुशोभित होती है।16।

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुखवर्हिणानि।

ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन्।।17।।

वह राजा दिलीप छोटे–छोटे तालाबों से निकले हुए बनैले सूअरों के झुण्डवाले, अपने–अपने आवास योग्य वृक्षों की तरफ 'जाने के लिए' उन्मुख मयूरों वाले तथा हरिण जिन पर बैठे हुए हैं ऐसे घासों से हरे प्रदेशवाले 'अत एव सर्वत्र' श्याम ही श्याम वनों को देखते हुए जाने लगे।17।

आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद् गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेनद्रः।

उभावलंचतुक्ररंचिताभ्यां तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम्।।18।।

पहली बार की व्याई हुई नन्दिनी और राजा दिलीप इन दोनों के क्रम से (नन्दिनी ने) स्तनों के भार के धारण करने में प्रयास करने तथा (राजा दिलीप ने) शरीर की स्थूलता के कारण अपने सुन्दर गमन से तपोवन से लौटने के मार्ग को सुशोभित किया।18।

वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्त्तमानं वनिता वनान्तात्।

पपौ निमेषालसपक्ष्मपंक्तिरुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम्।।19।।

वसिष्ठ महर्षि की नई व्याई हुई नन्दिनी नाम की धेनु के पीछे–पीछे चलने वाले तपोवन के प्रान्त भाग से लौटते हुए उन राजा दिलीप को स्नेह करने वाली रानी सुदक्षिणा ने नेत्र के बन्द करने में आलसी बरौनियों वाली होती हुई (अर्थात् एक टक से) प्यासे की भाँति से पिया अर्थात् देखा।19।

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।

तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।।20।।

मार्ग में राजा दिलीप द्वारा आगे की गई और उनकी पटरानी सुदक्षिणा से आगे जाकर ली हुई (अगवानी की गई) वह नन्दिनी सुदक्षिणा और दिलीप के बीच में दिन– रात के मध्य में स्थित सन्ध्याकाल की भांति शोभित हुई।20।

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता।

प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः शृंगान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः।।21।।

अक्षतों से युक्त पात्र को हाथ में लिये रानी सुदक्षिणा ने उत्तम दूध वाली उस नन्दिनी की प्रदक्षिणा तथा वन्दना करके उसके चौड़े, दोनों सींगों के मध्यभाग का, पुत्र प्राप्ति रूप प्रयोजन सिद्ध होने के द्वार की भांति जानकर पूजन किया।21।

वत्सोत्सुकाऽपि स्तिमिता सपर्यां प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ।

भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि।।22।।

नन्दिनी ने उस अपने बछड़े को देखने के लिए उत्कण्ठायुक्त होने पर भी स्थिर होते हुए 'सुदक्षिणा द्वारा किए गये' पूजन को स्वीकार किया। वे दोनों सुदक्षिणा और दिलीप प्रसन्न हुए। क्योंकि अपने में अनुराग रखनेवाले जनों के विषय में नन्दिनी के समान बड़े लोगों की प्रसन्नता का चिन्ह्, निश्चय से शीघ्र अभीष्टसिद्धि करने वाला होता है।22।।

गुरोः सदारस्य निपीड्य पादौ समाप्य सान्ध्यवंच विधिं दिलीपः।

दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम्।।23।।

बाहुओं से शत्रुओं को नष्ट करने वाले राजा दिलीप पत्नी सहित गुरु का चरण दबाकर, अपने सायंकालिक नित्यकृत्य समाप्त करने के पश्चात्, दूध दुह चुकने के बाद सुखपूर्वक बैठी हुई नन्दिनी की फिर सेना करने लगे।23।

तामन्तिकन्यस्तबलि प्रदीपामन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।

क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत्।।24।।

रक्षा करने वाला, सुदक्षिणा से सहित राजा दिलीप, जिसके समीप में उपहार सम्बन्धी दीप रखे गये हैं ऐसी उस बैठी हुई नन्दिनी के पश्चात् बैठकर क्रम से उस (नन्दिनी) के सोने के अनन्तर सोये और प्रातःकाल उसके सोकर उठ जाने के बाद उठे।24।

इत्थम् व्रतं धारयतः प्रजाऽर्थं समं महिष्या महनीयकीर्तेः।

सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य।।25।।

इस प्रकार पुत्र के लिए महारानी सुदक्षिणा के साथ नियम को धारण करते हुए प्रशंसनीय कीर्तिवाले दीनों के उद्धार करने में लगे हुए महाराज दिलीप के तिगुने सात (इक्कीस) दिन बीत गये।25।

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।

गंगाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश।।26।।

दूसरे (बाइसवें) दिन वसिष्ठ की होम सम्बन्धी धेनु (नन्दिनी) अपने सेवक राजा दिलीप के 'मुझ में दृढ़ भी है या नहीं' इस भाव को जानने की इच्छा रखती हुई गंगा के वारिप्रवाह के समीप उगी हुई है छोटी–छोटी घास जिसमें ऐसे पार्वती के पिता (हिमालय) की गुफा में घुसी।26।

सा दुष्प्रधर्षा मनसाऽपि हिंस्त्ररित्याद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन।

अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष।।27।।

'वह नन्दिनी हिंसक व्याघ्रादि दुष्ट जीवों द्वारा मन से भी बड़ी कठिनाई से कष्ट पहुंचाने के योग्य है' इस कारण निश्चिन्त हो हिमालय की शोभा देखने में दृष्टि को लगाये हुए राजा दिलीप के द्वारा जिसका आक्रमण करना नहीं देखा गया ऐसा मायाकृत सिंह हठात् उस नन्दिनी को बनावटी ढंग से खींचने लगा।27।

तदीयमाक्रन्दितमार्त्तसाधोर्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्।

रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां निवर्त्तयामास नृपस्य दृष्टिम्।।28।।

गुफा में टकराई हुई प्रतिध्वनि से ऊँचे हुए उस (नन्दिनी) के आर्त्तनाद ने दुःखियों के विषय में सज्जन (रक्षक) राजा दिलीप की हिमालय पर्वत (की शोभा देखने) में लगी हुई दृष्टि को लगाम पकड़कर जैसे कोई घोड़े आदि को फेरता है वैसे ही अपनी ओर फेर लिया।28।

स पाटलायां गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श।

अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्।।29।।

धनुष को धारण करने वाले उन राजा दिलीप ने श्वेतयुक्त लालवर्ण वाली नन्दिनी के ऊपर बैठे हुए सिंह को पर्वत की गैरिक धातुमयीं ऊँची भूमि में उगे हुए लोध्रवृक्ष की भांति देखा।29।

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।

जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषगांदुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारिः।।30।।

सिंह के दर्शन के बाद मृगेन्द्र की तरह चलने वाला, रक्षा करने में निपुण, शत्रुओं को बलपूर्वक उखाड़ने वाले, अपमान पाये हुए, राजा दिलीप ने सिंह को मारने के लिये तरकस से बाण निकालने की इच्छा की।30।

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्त्तुर्नखप्रभाभूषितकंकपत्रे।

सक्ताङ्गुलिः सायकपुंख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे।।31।।

प्रहार करने वाले उन राजा दिलीप का दाहिना हाथ, अपने नख की कान्ति से भूषित, कंक पक्षी के पंख जिसमें लगे हुए हैं ऐसे बाण के मूलप्रदेश में ही लगी हुई है अंगुलियां जिसकी ऐसा होता हुआ, चित्र में लिखे हुए बाण निकालने के उद्योग में लगे हुए की भांति हो गया।31।

बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युरभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशादिभः।

राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्तर्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः।।32।।

बाहुस्तम्भेन प्रवृद्धरोषो दिलीपः समीपस्थमप्यपराधकारिणं सिंह हन्तुमसमर्थो मन्त्रोष –धिसंरुद्धपराक्रम जिसका ऐसे सांप की भांति समीप में (स्थित) अपराधों को करने वाले का नहीं स्पर्श करते हुए अपने तेज से भीतर जलने लगे।32।

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनुर्मनुष्यवाचा मनुंवंशकेतुम्।

विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तो सिहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः।।33।।

नन्दिनी को पीडित किया हुआ सिंह सज्जनों के पक्ष में रहने वाले मनुवंश के द्योतक सिंह के समान महान् बलवान् अपने बाहुस्तम्भरूप व्यापार के विषय में चकित हुए उन राजा दिलीप को मनुष्यवाणी से पुनः चकित कराता हुआ बोला।33।

अलं महीपाल ! तव श्रमेण प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।

न पादपोन्मूलनशक्तिर्रहः शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य।।34।।

हे पृथ्वी के पालन करने वाले महाराज दिलीप! आपका श्रम करना वृथा है, अतः रहने दीजिये क्योंकि – मेरे ऊपर चलाया हुआ अस्त्र भी वैसा ही व्यर्थ होगा जैसा कि पेड़ों को उखाड़ने की शक्ति रखने वाले वायु का वेग पर्वत के विषय में व्यर्थ होता है।34।

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।

अवेहि मां किंकरमष्टमूर्त्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्।।35।।

हे राजन् ! कैलासपर्वत के तुल्य श्वेत बैल पर चढ़ने की इच्छा करने वाली आठ (पृथ्वी–जल–तेज–वायु–आकाश–सूर्य–चन्द्र–सोमयाजी) हैं मूर्त्तियां जिनकी ऐसे शिवजी के चरण रखने रूप अनुग्रह से पवित्र पीठवाला, निकुम्भ (शिवजी का प्रसिद्ध गण) का मित्र, 'कुम्भोदर' नाम से प्रसिद्ध 'शिवजी का' नौकर मुझे तुम जानो।35।

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषध्वजेन।

यो हेमकुम्भस्तननिः सृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः।।36।।

हे राजन् तुम जो आगे स्थित इस देवदारु के वृक्ष को देख रहे हो इसे शंकरजी ने पुत्रभाव से माना है और जो कार्त्तिकेय की मां पार्वतीजी के सोने के घटरूपी स्तनों से निकले हुए दूध रूपी जल के स्वाद को जाननेवाला है, स्कन्दपक्ष में सोने के घड़े के समान स्तनों से निकले हुए दूध के स्वाद को जाननेवाला है।36।

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।

अथैनमद्रेस्तनया शुशोच सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः।।37।।

किसी समय गण्डस्थल को रगड़ते हुए किसी जंगली हाथी ने इस देवदारुवृक्ष की छाल उधेड़ डाली, इसके बाद पार्वतीजी ने दैत्यों के अस्त्रों से चोट खाये हुए अपने पुत्र स्कन्द के समान इसके सम्बन्ध में भी शोक किया।37।

तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ।

व्यापारितः शूलभृता विधाय सिंहत्वमंकागतसत्त्ववृत्ति।।38।।

उसी समय से जंगली हाथियों को डराने के लिये, शूल को धारण करने वाले श्रीशिवजी ने समीप में आये हुए प्राणियों पर निर्वाह करानेवाली सिंहवृत्ति देकर मुझे इस पहाड़ की गुफा में नियुक्त किया है।38।

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।

उपस्थिता शोणितपारणा मे सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव।।39।।

शिवजी के बताये हुये भोजन के समय पर उपस्थित यह गोरूप रुधिर सम्बन्धी व्रत के समाप्ति समय का भोजन दैत्य राहु के लिए चंद्रसंबंधी अमृत की भांति, उसको अर्थात् समीप में आये हुए प्राणियों को खाकर जीवन निर्वाह करने वाले भूखे हुए मुझ सिंह की तृप्ति के लिए पर्याप्त (पूरा) होगा।39।

स त्वं निवर्त्तस्व विहाय लज्जां गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः।

शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्षं न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति।।40।।

उपाय से शून्य पूर्वोक्त तुम लज्जा को छोड़कर लौट जाओ। तुमने गुरु के सम्बन्ध में शिष्य के योग्य भक्ति दिखला दी। जो रक्षा करने योग्य वस्तु शस्त्र से रक्षा करने के योग्य नहीं होती वह नष्ट होती हुई भी शस्त्रधारी की कीर्ति को नष्ट नहीं करती।40।

इति प्रगल्भं पुरुषाधिराजो मृगाधिराजस्य वचो निशम्य।

प्रत्याहतास्त्रो गिरिशप्रभावादात्मन्यवज्ञां शिथिलीचकार।।41।।

नराधिप दिलीप ने इस प्रकार से ढीठ सिंह के वचन को सुनकर शंकर के प्रभाव से अपने शस्त्र की गति रुकी हुई जानकर अपने विषय में अपमान के भाव को शिथिल कर दिया, अपना अपमान नहीं समझा।41।

प्रत्यब्रवीच्चैनमिषुप्रयोगे तत्पूर्वभंगे वितथप्रयत्नः।

जडीकृतस्त्र्यम्बकवीक्षणेन वज्रं मुमुक्षन्निव वज्रपाणिः।।42।।

पहले पहल हुई है रुकावट जिसकी ऐसे बाण के चलाने में निष्फल प्रयत्न वाले अत एव शंकर भगवान् के देखने से ही निश्चेष्ट किये हुए वज्र का प्रहार करने की इच्छा करने वाले वज्र है हाथ में जिसके ऐसे इन्द्र के समान स्थित राजा दिलीप इस सिंह के प्रत्युत्तर में बोले।42।

संरुद्धचेष्टस्य मृगेन्द्र ! कामं हास्यं वचस्तद्यदहं विवक्षुः।

अन्तर्गतं प्राणभूतां हि वेद सर्वं भवान्भावमतोऽभिधास्ये।।43।।

हे सिंह ! यद्यपि रुकी हुई है चेष्टा जिसकी ऐसे मुझ दिलीप का वह वचन अत्यन्त परिहास करने के योग्य है, जिसे मैं कहने की इच्छा करने वाला हो रहा हूँ तथापि आप सभी जीवों के हृदय के भाव जानते हैं, इससे कहूंगा।43।

मान्यः स मे स्थावरजंगमानां सर्गस्थितिप्रत्यवहारहेतुः।

गुरोरपीदं धनमाहिताग्नेर्नश्यत्पुरस्तादनुपेक्षणीयम्।।44।।

स्थावर (वृक्ष–पर्वत–आदि) और जंगमो (मनुष्यादिकों) की उत्पत्ति, पालन और संहार करने में कारण वे श्रीशिवजी मेरे पूज्य हैं (अर्थात् उनकी आज्ञा माननीय है) और आगे नष्ट होता हुआ यह अग्निहोंत्र करने वाले गुरु वसिष्ठ महाराज का गोरूप धन भी उपेक्षा करने के योग्य नहीं है (अर्थात् इसकी रक्षा करनी चाहिये)।44।

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्ति देहेन निर्वर्त्तयितुं प्रसीद।

दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः।।45।।

समीप में आये हुए प्राणियों पर अपना जीवन निर्वाह करने वाले (ऐसे) तुम मेरे शरीर से अपने शरीर का जीवन रखने के लिये अनुग्रह करो, (गौ के बदले मुझे खालो) और दिन के समाप्त होने पर 'हमारी मां आती होगी' इससे उत्कण्ठित छोटे बछड़े वाली महर्षि वसिष्ठ की इस धेनु 'नन्दिनी' को छोड़ो।45।

अथान्धकारं गिरिगह्वराणां दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन्।

भूयः स भूतेश्वरपाश्वर्त्ती किंचिद्विहस्यार्थपतिं बभाषे।।46।।

दिलीप के कह चुकने के बाद भगवान् शंकर के पास का रहने वाला वह सिंह हिमालय पर्वत की गुफाओं के अन्धकार को दाँतों की कान्ति से टुकड़े–टुकड़े करता हुआ कुछ हंसकर दिलीप से फिर बोला।46।

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।

अल्पस्य हेतोर्बहुहातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्।।47।।

एकच्छत्र, संसार की प्रभुता, नवीन युवावस्था और यह सुंदर शरीर इन सब बहुतों को थोड़े से नन्दिनीय रूप फल के लाभ के कारण से छोड़ने की इच्छा करते हुए तुम 'क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये' इसके विचार करने में मुझे मुर्ख मालूम पड़ते हो।47।

भूतानुकन्पा तव चेदयं गौरेका भवेत्स्वस्तिमती त्वदन्ते।

जीवन्पुनः शश्वदुपप्लवेभ्यः प्रजाः प्रजानाथ ! पितेव पासि।।48।।

हे राजन् ! यदि तुम्हारी प्राणियों पर दया है, तो तुम्हारे मर जाने पर केवल यही एक गौ कल्याण से युक्त हो सकती है। हे प्रजाओं के स्वामी महाराज दिलीप ! आप जीते हुए निश्चय ही पिता के समान प्रजाओं की विघ्नों से निरन्तर रक्षा कर सकते हैं।48।

अथैकधेनोरपराधचण्डाद् गुरोः कृशानुप्रतिमाद् विभेषि।

शक्योऽस्य 'मन्युर्भवता विनेतुं गाः कोटिशः स्पर्शयता घटोघ्नीः।।49।।

अथवा हे राजन् ! एक ही है धेनु जिसके अत एव गौ की रक्षा न करने रूप अपराध होने से अत्यन्त क्रुद्ध हुए, अग्नि के तुल्य अपने गुरु वसिष्ठ जी से यदि तुम डरते हो तो, उनके क्रोध को घड़े के समान बड़े–बड़े स्तनों वाली करोड़ों गायों को देते हुए दूर करने में समर्थ हो।49।

तद्रक्ष कल्याणपरम्पराणां भोक्तारमूर्जस्वलमात्मदेहम्।

महीतलस्पर्शनमात्रभिंन्नमृद्धं हि राज्यं पदमैन्द्रमाहुः।।50।।

इस कारण हे राजन् ! तुम उत्तरोत्तर सुखों को भोग करने वाले अत्यन्त बल से युक्त अपने शरीर की रक्षा करो क्योंकि विद्वान् लोग समृद्धिशाली राज्य को केवल पृथ्वीतल का सम्बन्ध होने से अलग हुआ इन्द्रसम्बन्धी स्थान (स्वर्ग) कहते हैं।50।

एतावदुक्त्वा विरते मृगेन्द्र प्रतिस्वनेनास्य गुहागतेन।

शिलोच्चयोऽपि क्षितिपालमुच्चैः प्रीत्या तमेवार्थमभाषतेव।।51।।

सिंह के इतना कहकर चुप हो जाने पर गुफा में पहुंची हुई इसकी प्रतिध्वनि द्वारा पर्वत भी प्रेम से मानों उसी बात को राजा दिलीप से जोर से कहने लगा।51।

निशम्य देवानुचरस्य वाचं मनुष्यदेवः पुनरप्युवाच।

धेन्वा तदध्यासितकातराक्ष्या निरीक्ष्यमाणः सुतरां दयालुः।।52।।

शंकर भगवान् के नौकर (सिंह) की वाणी सुनकर मनुष्यों के राजा (वे दिलीप) फिर भी (उससे) बोले, जो कि उस सिंह के द्वारा आक्रान्त होने से आकुल नेत्रों वाली नन्दिनी से देखे जाते हुए अत एव अत्यन्त दयालु हो रहे थे।52।

क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्त्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।

राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा।।53।।

उन्नत जो क्षत्रियवर्ण का वाचक क्षत्त्र शब्द है सो 'क्षत् अर्थात् नाश से जो बचावे वह क्षत्रिय कहलाता है' इस व्युत्पत्ति से संसार में 'पटज' की तरह योगरूढ़ि से प्रसिद्ध है, अतः उस क्षत्त्र शब्द से विपरीत व्यापार करनेवाले अर्थात् नाश से नहीं रक्षा करने वाले पुरुष के राज्य और अपकीर्ति से मलिन हुए प्राण (जीवन) ये दोनों व्यर्थ हैं।53।

कथं तु शक्योऽनुनयो महर्षेर्विश्राणनाच्चान्यपयस्विनीनाम्।

इमामनूनां सुरभेरवेहि रुद्रौजसा तु प्रहृतं त्वयाऽस्याम्।।54।।

और महर्षि वसिष्ठ जी के क्रोध की शान्ति दूसरी दूध देने वाली गायों के देने से किस प्रकार हो सकती है?

'अर्थात् कभी नहीं हो सकती है' क्योंकि इसे कामधेनु से कम नहीं समझना चाहिये 'अर्थात् तुल्य ही समझना चाहिये' और इसके ऊपर जो तुम्हारा आक्रमण हुआ है, उसे भी शंकर भगवान् की सामर्थ्य से ही समझना चाहिये न कि अपनी सामर्थ्य से।54।

सेयं स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण न्याय्या मया मोचयितुं भवत्तः।

न पारणा स्याद्विहता तवैवं भवेदलुप्तश्च मुनेः क्रियाऽर्थः।।55।।

कामधेनु के तुल्य इस नन्दिनी को मेरा अपने शरीरार्पण रूप निष्क्रय के द्वारा आप से छुड़ाना न्यायसंगत है ऐसा करने पर आपके व्रत के अन्त का भोजन (पारणा) भी नष्ट नहीं होगा और वसिष्ठ महर्षि का होमादि रूप प्रयोजन भी नष्ट नहीं होगा।55।

भवानपीदं परवानवैति महान् हि यत्नस्तव देवदारौ।

स्थातुं नियोक्तुर्न हि शक्यमग्रे विनाश्य रक्ष्यं स्वयमक्षतेन।।56।।

पराधीन होते हुये आप भी इस (आगे कहीं जाने वाली) बात को जानते हैं, क्योंकि आपका देवदारु के विषय में 'रक्षा करने के लिये' बहुत भारी प्रयत्न है। 'अत एव' रक्षा करने के योग्य वस्तु का नाश करके स्वयम् बिना नष्ट हुए नौकर स्वामी के आगे उपस्थित होने के लिये समर्थ नहीं हो सकता।56।

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशःशरीरे भव मे दयालुः।

एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।।57।।

और यदि मैं तुम्हारे समझ में अवध्य हूँ तो तेरे यश रूप शरीर के विषय में तुम दयायुक्त होओ, क्योंकि हमारे ऐसे लोगों की अवश्य नष्ट होने वाले पृथ्वी–जल–तेज– वायु–आकाश इन पांच महाभूतो से बने हुए शरीर में अपेक्षा नहीं रहती है।57।

सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृत्तः स नौ सग्तयोर्वनान्ते

तद् भूतनाथानुग ! नार्हसि त्वं सम्बन्धिनो मे प्रणयं विहन्तुम्।।58।।

सम्बन्ध (मैत्री) को जो बातचीत से उत्पन्न हुआ लोग कहते हैं, वह वन के बीच में मिले हुए हम दोनों का हो चुका है, इस कारण हे शिवजी के अनुचर सिंह ! तुम सम्बन्धी होकर मुझ दिलीप की प्रार्थना को विफल करने के लिये योग्य नहीं हो।58।

तथेति गामुक्तवते दिलीपः सद्य प्रतिष्ठम्भविमुक्तबाहुः।

स न्यस्तशस्त्रो हरये स्वदेहमुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य।।59।।

'वैसा ही हो' इस वचन को कहते हुए सिंह के लिए उसी क्षण में बन्धन से खुली बाहु वाले उस राजा दिलीप ने शस्त्र के त्यागने वाले होते हुए अपने शरीर को मांस के पिण्ड (ग्रास) के समान समर्पण कर दिया।59।

तस्मिन् क्षणे पालयितुः प्रजानामुत्पश्यतः सिंहनिपातमुग्रम्।

अवाङ्मुखस्योपरि पुष्पवृष्टिः पपात विद्याधरहस्तमुक्ता।।60।।

उस क्षण में उत्कृष्ट सिंह के आक्रमण के विषय में विचार करते हुए नीचे को मुख किये प्रजाओं के पालन करने वाले राजा दिलीप के ऊपर विद्याधर नामक देवयोनिविशेषों के हाथों से छोड़ी गई फूलों की वर्षा हुई।60।

उत्तिष्ठ वत्सेत्यमृतायमानं वचो निशम्योत्थितमुत्थितः सन्।

ददर्श राजा जननीमिव स्वां गामग्रतः प्रस्त्रविणीं न सिंहम्।।61।।

राजा दिलीप ने अमृत के समान (नंदिनी के मुख से) निकले हुए 'हे पुत्र ! उठो' इस वचन को सुनकर उठते हुए आगे 'स्थित' जिसके 'स्तनो से' दूध बह रहा है, ऐसी गौ (नन्दिनी) को अपनी माँ के समान देखा 'किन्तु' सिंह को नहीं देखा।61।

तं विस्मितं धेनुरुवाच साधो ! मायां मयोराव्य परीक्षितोऽसि

ऋषिप्रभावान्मयि नान्तकोऽप प्रभुः प्रहर्तुं किमुतान्यहिंस्त्राः।।62।।

आश्चर्य से युक्त उन राजा दिलीप से धेनु बोली कि – हे सज्जन महाराज दिलीप ! मैंने माया को उत्पन्न कर तुम्हारी परीक्षा की थी, महर्षि वसिष्ठ जी के प्रभाव से यमराज भी मुझ पर प्रहार करने के लिये समर्थ नहीं हैं, दूसरे हिंस्त्र व्याघ्रादि तो और भी समर्थ नहीं हैं।62।

भक्त्या गुरौ मय्यनुकम्पया च प्रीताऽस्मि ते पुत्रं ! वरं वृणीष्व।

न केवलानां पयसां प्रसूतिमवेहि मां कामदुघां प्रसन्नाम्।।63।।

हे पुत्र ! वसिष्ठ महर्षि के विषय में भक्ति रहने से और मेरे विषय में दया रखने से मैं तुम पर प्रसन्न होने पर अभिलाषों को पूरी करने वाली भी जान।63।

ततः समानीय स मानिताथी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।

वंशस्य कर्त्तारमनन्तकीर्त्तिं सुदक्षिणायां तनयं यायाचे।।64।।

उसके बाद याचकों को सन्तुष्ट करनेवाले अपने हाथों से 'वीर' इस शब्द को प्राप्त करनेवाले उन राजा दिलीप ने दोनों हाथों को जोड़कर वंश को चलाने वाले स्थिरकीर्तिशाली पुत्र 'अपनी रानी' सुदक्षिणा में होने की प्रार्थना की।64।

सन्तानकामाय तथेति कामं राज्ञे प्रतिश्रुत्य पयस्विनी सा।

दुग्ध्वा पयः पत्रपुटे मदीयं पुत्रोपभुङ्क्ष्वेति तमादिदेशः।।65।।

उस उत्तम दूधवाली नन्दिनी ने पुत्र चाहनेवाली राजा दिलीप से 'वैसा ही हो' ऐसी वरदान की प्रतिज्ञा करके 'हे पुत्र ! मेरे दूध को पत्ते के दोने में दुह कर पी लो' ऐसी उन्हें आज्ञा दी।65।

वत्सस्य होमार्थविधेश्च शेषमृषेरनुज्ञामधिगम्य मातः !।

औधस्यमिच्छामि तवोपभोक्तुं षष्ठांशमुर्व्या इव रक्षितायाः।।66।।

हे मां ! मैं बछड़े के पीने से तथा होमरूप प्रयोजन के अनुष्ठान (अग्नि होत्रादि) से बचे हुये तुम्हारे स्तनों से निकले हुए दूध का पालन की गई पृथ्वी के षष्ठांश (छठे भागरूप) की तरह ऋषि वसिष्ठ की आज्ञा प्राप्त करके पीना चाहता हूँ।66।

इत्थं क्षितीशेन वसिष्ठधेनुर्विज्ञापिता प्रीततरा बभूव।

तदन्विता हैमवताच्च कुक्षेः प्रत्याययावाश्रममश्रमेण।।67।।

इस प्रकार से राजा दिलीप के प्रार्थना करने से वसिष्ठ महर्षि की धेनु नन्दिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई और दिलीप से युक्त होती हुई हिमालय की गुफा से बिना परिश्रम के आश्रम की तरफ लौटी।67।

तस्याः प्रसन्ननेन्दुमुखः प्रसादं गुरुर्नृपाणां गुरवे निवेद्य।

प्रहर्षचिह्नानुमितं प्रियायै शशंस वाचा पुनरुक्तयेव।।68।।

निर्मल चन्द्रमा की भाँति स्वच्छ मुखवाले राजाओं में श्रेष्ठ दिलीप ने अधिक प्रसन्नता के द्योतक मुख की लालिमा आदि चिन्हों से जिसका अनुमान हो रहा था, ऐसे उस नन्दिनी के वरदानरूपी अनुग्रह को हर्ष के जाननेवाले चिन्हों से कहने से पहले ही मालमू हो जाने से दुबारा कही जाती हुई वाणी की भांति गुरुजी से निवेदन किया पश्चात् प्यारी पटरानी सुदक्षिणा से भी कहा।68।

स नन्दिनीस्तन्यमनिन्दितात्मा सद्वत्सलो वत्सहुतावशेषम्।

पपौ वसिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्त्तमिवातितृष्णः।।69।।

प्रशंसनीय स्वभाववाले, सज्जनों से प्रेम रखने वाले, वसिष्ठ महर्षि की आज्ञा को प्राप्त किये हुए, उन राजा दिलीप ने बछड़े के पीने से तथा अग्निहोत्र से बचे हुए नन्दिनी के दूध को सफेद मूर्ति को धारण किये हुए यश की भाँति अधिक तृष्णा से युक्त होते हुए पिया।69।

प्रातर्यथोक्तव्रतपारणाऽन्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।

तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वसिष्ठः।।70।।

इन्द्रियों के ऊपर अपनी प्रभुता रखनेवाले (जितेन्द्रिय) वसिष्ठ महर्षि ने प्रातःकाल में पूर्वोक्त गोसेवा रूप व्रत की पारणा कर चुकने के बाद प्रस्थानकालोचित स्वस्त्ययन करके उन दोनों स्त्री–पुरुष सुदक्षिणा और दिलीप को उनकी राजधानी अयोध्या की तरफ भेजा।70।

प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशमनन्तरं भर्तुररुन्धतीं च।

धेनुं सवत्सां च नृपः प्रतस्थे स मंगलोदग्रतरप्रभावः।।71।।

राजा दिलीप ने आहुति दिये हुये अग्नि की और रक्षा करनेवाले वसिष्ठ जी की प्रदक्षिणा कर चुकने के बाद उनकी पत्नी अरुन्धती तथा बछड़े के सहित नन्दिनी की भी प्रदक्षिणा करके अच्छे मग्लमय प्रदक्षिणा आदि करने से बढ़े हुए तेज वाले होते हुए प्रस्थान किया।71।

श्रोत्राभिरामध्वनिना रथेन स धर्मपत्नीसहितः सहिष्णुः।

ययावनुद्घातसुखेन मार्गं स्वेनेव पूर्णेन मनोरथेन।।72।

धर्मपत्नी सुदक्षिणा के सहित व्रतादि सम्बन्धी दुःखों के सहन करनेवाले उन राजा दिलीप के कानों को सुख देनेवाली है ध्वनि जिसकी तथा नीचे–ऊँचे पत्थरों की ठोकर से जिसमें से नहीं गिर सकता, अतएव सुखप्रद रथ से जो सुनने से कानों को सुख देने वाला है तथा प्रतिबन्ध के दूर हो जाने से आनन्दप्रद है ऐसे अपने सफल हुए मनोरथ के समान रास्ते को तय करने लगे।72।

तमाहितौत्सुक्यमदर्शनेन प्रजाः प्रजाऽर्थव्रतकर्शितांगम्।

नेत्रैः पपुस्तृप्तिमनाप्नुवद्भिर्नवौदयं नाथमिवौषधीनाम्।।73।।

प्रवास होने के कारण नहीं देख पड़ने से 'चन्द्रपक्ष में' कला के क्षय हो जाने से नहीं दीख पड़ने से लोगों से देखने की उत्कण्ठा जिसने उत्पन्न करा दी है तथ पुत्र के लिए गौसेवारूप व्रत करने से जिनका शरीर कृश हो गया है, 'चन्द्रपक्ष में' लोक के हित के लिए देवताओं को अमृतरूपी कलाओं के दानरूपी नियम से जिसका नवीन आविर्भाव हुआ है, ऐसे औषधियों के स्वामी चन्द्रमा की भाँति उन राजा दिलीप को प्रजाओं ने अतृप्त नेत्रों से देखा।73।

पुरन्दरश्रीः पुरमुत्पताकं प्रविश्य पौरैरभिनन्द्यमानः।

भुजे भुजंगेन्द्रसमानसारे भूयः स भुमेर्धुरमाससंज।।74।।

इन्द्र के समान कान्ति वाले उन राजा दिलीप ने पुरवासियों से अभिनन्दन किये जाते हुए, जिसमें पताकायें पहरा रही थीं, ऐसे 'अयोध्या' नामक नगर में प्रवेश करके सर्पराज वासुकि के समान बल रखने वाले बाहु पर फिर पृथिवी के पालन रूप भार को धारण किया।74।

अथ नयनसमुत्थं ज्योतिरत्रेरिव द्यौः सुरसरिदिव तेजो वह्निनिष्ठयूतमैशम्।

नरपतिकूलभूत्यै गर्भमाधत्त राज्ञी गुरुभिरनिविष्टं लोकपालानुभावैः।।75।।

इसके बाद आकाश ने जैसे अत्रि मुनि के नेत्रों से उत्पन्न ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा को और देवनदी गंगा ने जैसे अग्नि से फेंके हुये शंकरसम्बन्धी (स्कन्द को पैदा करने वाले) वीर्य को धारण किया, उसी भाँति रानी सुदक्षिणा ने भी राजा दिलीप के कुल की 'सन्तान रूप' सम्पत्ति के लिये श्रेष्ठ लोकपालों के तेज से प्रविष्ट गर्भ को धारण किया।75।

2.4 अपनी प्रगति जांचिए

1 रामायण के रचनाकार कौन है ?

2 रामायण में कितने काण्ड हैं ?

3 श्रीमद्भगवद्गीता में कितने अध्याय हैं ?

4 'रघुवंशम्' किसकी रचना है ?

5 'रघुवंशम्' में कितने सर्ग हैं ?

2.5 सारांश

2.5.1 रामायणम् (बालकाण्डम्, प्रथम सर्ग)

महर्षि वाल्मीकि तपस्या एवं स्वाध्याय में निरत रहते थे। नारद जी भी तपस्या और स्वाध्याय में निरत रहते थे। मुनिवर नारदजी विद्वानों में श्रेष्ठ थे। इसलिए वाल्मीकि जी ने नारद जी से प्रश्न किया। इस समय इस संसार में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ आदि गुणों से युक्त कौन है ? नारद जी ने सभी गुणों से युक्त दशरथ नन्दन राम का उल्लेख किया। तदनन्तर मुनिवर नारद जी ने दशरथ द्वारा राम के युवराज पद पर अभिषिक्त होने से लेकर, वनवास के बाद पुनः अयोध्या में लौटकर राज्य करने वाले श्रीराम के चरित्र का वर्णन किया। नारद मुनि जी ने फिर रामराज्य की महिमा का गुणगान् किया। उन्होंने कहा कि रामचरित्र वेदों के समान पापनाशक, पवित्र और पुण्यमय है। इसके पढ़ने वाला पापों से मुक्त हो जाता है। यह आयु को बढ़ाने वाला है। यह मरने के बाद स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला है।

2.5.2 श्रीमद्भगवद्गीता (द्वितीय अध्याय)

महाभारत के छठे पर्व 'भीष्म पर्व' के अन्तर्गत संकलित श्रीमद्भगवदगीता अट्ठारह अध्यायों में विभक्त है; विषय प्रतिपादन की दृष्टि से प्रत्येक अध्याय का नामकरण किया गया है जैसे प्रथम अध्याय को 'अर्जुन विषाद योग' नाम दिया गया है और द्वितीय अध्याय को 'सांख्य योग' नाम दिया गया है। इस अध्याय में कुल 72 श्लोक है विषय की दृष्टि से इसे पांच भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1 अर्जुन की कायरता के विषय में श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद : प्रथम 10 श्लोकों में यह संवाद 'सांख्य योग' नामक दार्शनिक विषय की पृष्ठ भूमि अथवा भूमिका है। प्रथम अध्याय में संजय महाराजा धृतराष्ट्र के यह पूछने पर कि 'धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में युद्ध की इच्छा से आमने–सामने डटे हुए मेरे और पाण्डू पुत्रों ने क्या किया'' संजय उत्तर देते हुए दोनों सेनाओं के महारथियों का परिचय देकर कहते हैं कि अर्जुन से कहा कि हे हृषीकेश मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो। मैं यह देखना चाहता हूँ कि दुर्बुद्धि दुर्योधन के हितैषी राजा कौन–कौन हैं और मुझे किस–किस के साथ युद्ध करना है ? दोनों सेनाओं के मध्य में खड़े होकर जब अर्जुन ने अपने पितामह, आचार्य, चाचा ताऊओं, मामा, भईयों, पुत्रों और अनेक सगे सम्बन्धियों को देखा तो वह मोहाविष्ट होकर कहने लगा कि हे कृष्ण मैं यह युद्ध नहीं लड़ सकता, अपने दादा गुरूओं, भाईयों पुत्र–पौत्रों और सम्बन्धियों को देखा तो वह मोहाविष्ट होकर कहने लगा कि हे कृष्ण मैं यह युद्ध नहीं लड़ सकता, अपने दादा गुरूओं, भाईयों पुत्र–पौत्रों और सम्बन्धियों को मारकर किसके लिए राज्य प्राप्त करूंगा अपनों को मारकर कुल विनाश करके मैं पाप का भागी नहीं बनना चाहता। मैं तो निहत्था होकर कौरवों के हाथों मरना उचित समझता हूँ। संजय धृतराष्ट्र को बतला रहे हैं कि हे राजन ऐसे वचन कह कर शोक से उद्विग्न मन वाले अर्जुन अपने धनुष बाण को छोड़कर रथ के पिछले भाग में बैठ गये।

द्वितीय अध्याय के प्रारम्भ में संजय कहते हैं कि व्याकुल और शोकाभिभूत अर्जुन को मधुसूदन ने कहा कि हे अर्जुन ! तुम्हारा यह आचरण किसी भी प्रकार से उचित नहीं हैं इसलिए, दुर्बलता और नपुंसकता को छोड़ो और युद्ध के लिए खड़े हो जाओ। अर्जुन कहता है कि हे मधुसूदन मैं अपने पूज्य पितामह और गुरू को मार कर खून से सने भोगों को नहीं भोगना चाहता और जिन पर हम विजय प्राप्त कर भी लेंगे तो वे भी हमारे आत्मीय ही हैं। इसलिए कायरता से युक्त दोष से उपहत स्वभाव वाला मैं आपकी शरण में हूँ मुझे आप जो साधन निश्चित कल्याण का कारण है मुझे वह बतलाइये। मैं आपका शिष्य हूं मुझे उचित शिक्षा दीजिए क्योंकि मैं इन्द्रियों को मोहित करने वाले शोक को दूर करने का उपाय नहीं देख रहा हूँ। भले ही मैं एक छत्र राज्य को और देवताओं के आधिपत्य को भी प्राप्त कर लूँ। इस प्रकार अपनी भावना को प्रकट करके अर्जुन श्री कृष्ण से स्पष्ट रूप से यह कहकर कि ''मैं युद्ध नहीं करूंगा'' चुप हो गये।

2 सांख्य योग विषय : ग्यारहवें श्लोक से 30वें श्लोक तक श्री कृष्ण के उपदेश के रूप में सांख्य योग विषय का इस प्रकार वर्णन किया गया है –

दोनों सेनाओं के बीच में खड़े होकर युद्ध न करने का ऐलान करने वाले अर्जुन को अन्तर्यामी कृष्ण हंसते हुए यों कहने लगे कि हे अर्जुन तुम भले ही विद्वानों जैसी बातें करते हो लेकिन यह नहीं जानते कि पण्डित लोग मरे हुओं और जीवितों के लिए शोक नहीं करते। मैं, तुम और ये सभी राजा पहले भी उत्पन्न हुए थे, और आगे भी उत्पन्न होंगे।

इस जीवात्मा की बचपन, जवानी और बुढ़ापा आदि अवस्थाएं होती हैं उसी प्रकार दूसरा शरीर धारण करना भी एक अवस्था है। इसलिए धीर पुरुष इस विषय (देह परित्याग और दूसरे शरीर के प्राप्ति) में शोक नहीं करते। सुख दुःख आदि विषयों के संयोग और इन्द्रियां तो उत्पन्न होने वाले, नष्ट होने वाले और अनिय हैं इसलिए इन्हें सहन कर। सुख और दुःख को समान समझने वाला व्यक्ति ही मोक्ष का अधिकारी होता है। सत् और असत् को पहचान, अविनाशी तो केवल वही है जिसमें यह जगत् विद्यमान और व्याप्त है। इस अविनाशी का कोई विनाश नहीं कर सकता। इस अविनाशी, अप्रमेय और नित्य जीवात्मा के ये सब शरीर ही नश्वर हैं, इसलिए तू युद्ध कर। आत्मा के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह आत्मा न तो मरता है और न ही किसी को मारता है। जो इसे मारने वाला और मरने वाला मानते हैं वे अज्ञानी है। क्योंकि ''न जायते म्रियते.... अजो नित्यः .... शरीरे'' यह आत्मा न तो उत्पन्न होता है और न ही मृत्यु को प्राप्त होता है, न पुनः जन्म प्राप्त करता है यह तो

अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मरता। जो इस रहस्य को जानता है वह कैसे किसको मरवा सकता है अथवा मार सकता है।

एक दृष्टान्त के द्वारा जन्म–मरण और पुनर्जन्म को समझाते हुए केशव कहते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण और पुराने वस्त्रों को त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा पुराने तथा जीर्ण शरीर का परित्याग करके नये शरीरों को धारणा करता है – यह आत्मा न काटा जा सकने वाला, न जलाया जा सकने वाला (अदाह्य) जल से न भीगने वाला तथा न सूखने वाला है, यह अव्यक्त, अचिन्त्य विकार रहित है, इसलिए इसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकता जल गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता अतः इस विषय में तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए और यदि तू इस आत्मा को सदा जन्म तथा मरण स्वभाव वाला ही मानता है तो भी तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि ''जातस्य ही ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच।'' अर्थात् जन्म धारण करने वाले प्राणी को मृत्यु अवश्य प्राप्त होती है और मरे हुए का जन्म अवश्य होता है इसलिए इस अवश्यम्भावी और उपाय रहित विषय में तुझे शोक नहीं करना चाहिए और भी ये सभी प्राणी जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात् अदृश्य ही रहते हैं केवल इनके मध्य में ही प्रकट हैं, इस स्थिति को जानते हुए तुझे शोक करना ठीक नहीं। आत्म तत्व को जानने वाला, बतलाने वाला और इसे सुनकर समझने वाला कोई विरला ही होता है क्योंकि बहुत से लोग तो इसे सुनकर भी समझ नहीं पाते। हे अर्जुन यह आत्मा सब प्राणियों के शरीरों में सदा अवध्य है, अतः सबके लिए तुम्हारा शोक करना उचित नहीं है।

3 क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध करने की आवश्यकता का निरूपण : श्लोक संख्या 31 से 37 तक श्री कृष्ण अर्जुन को क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध करना आवश्यक बतलाते हुए उसके मोह को दूर करके युद्ध के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं कि सांख्य–योग दर्शन के अनुसार प्राणियों की मृत्यु के लिए दुःखी होना तुम जैसे क्षत्रिय के लिये योग्य नहीं है और क्षत्रिय होने के नाते क्षात्र धर्म के अनुसार भी क्षत्रिय के लिए धर्मानुसार युद्ध करना सबसे बड़ा और कल्याणकारी कर्त्तव्य है क्योंकि क्षत्रिय के लिए स्वर्ग प्राप्ति का मार्ग युद्ध ही है और इसे अर्थात् धर्मपूर्वक किए जाने वाले युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय ही प्राप्त करते हैं, इसलिये यदि तुम युद्ध नहीं करोगे तो पाप के भागी बनोगे और अनन्त काल तक तुम्हारी अपकीर्ति तुम्हारे लिए मरण से भी बढ़कर होगी और इस प्रकार तेरी कायरता पर यह समस्त क्षत्रिय वर्ग तुम्हें अनेक वचनों से धिक्कारेंगे। यह तेरे लिए सबसे अधिक दुखदायी और असहनीय होगा इसलिए उठ और युद्ध कर क्योंकि यह युद्ध तुम्हें दोनों प्रकार से लाभप्रद होगा। यदि युद्ध में मारे गये तो स्वर्ग प्राप्त करोगे और यदि विजयी हुए तो पृथ्वी के राज्य को भोगोगे। ''हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।'' तुम सुख–दुःख, लाभ–हानि, जय–पराजय इन सबमें भेद न करते हुए सबको समान समझ कर यदि युद्ध करोगे तो पाप के भागी नहीं होगे, इस प्रकार प्रथम 30 श्लोकों में ज्ञान–योग का वर्णन करने के पश्चात् श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म योग का उपदेश देते हुए कहते हैं कि इस विषय (कर्मयोग) को जान कर तू कर्मों के बन्धन को त्याग देगा जिससे इतना मोहाविष्ट हुआ है।

4 कर्मयोग विषय का उपदेश : द्वितीय अध्याय के श्लोक 39 से 53 तक कर्मयोग विषय का उपदेश किया गया है :– कृष्ण मोहाविष्ट अर्जुन को कर्म के स्वरूप का सही वर्णन समझाते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन इस कर्मयोग में प्रारब्ध का विनाश और फलदोष नहीं है बल्कि इसके स्वरूप का थोड़ा सा भी ज्ञान जन्म और मृत्यु के महान भय से रक्षा करने का साधन बनता है। सामान्य जनों में सकाम कर्म का मोह रहता है जिससे उनकी बुद्धियां अनेकानेक भेदों वाली होकर विवेकहीन और अस्थिर विचारों को जन्म देती हैं, हे पार्थ जो व्यक्ति वेद एवं ब्राह्मण वाक्यों के कर्मकाण्ड पर विश्वास रखते हैं जो अनेक भोगों को और स्वर्ग को प्राप्त करने के लिए सकाम कर्म करते हैं और उन वाणियों का उपदेश करते हैं जो जन्म रूप कर्मफल को और अनेक ऐश्वर्यो को देने वाली है, उसे उन पुरुषों की बुद्धि परमात्मा में निश्चय वाली नहीं होती अपितु भोग और ऐश्वर्य में आसक्ति बढ़ाने वाली होती हैं। अतः तू उन सबको छोड़ जो तुझे भोगों और उनके साधनों में आसक्ति बढ़ाने वाले हैं और योग (अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति) और

क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) की इच्छा न करता हुआ स्वाधीन अन्तःकरण वाला बन। वैदिक कर्मकाण्ड से ज्ञान काण्ड को श्रेष्ठ बतलाते हुए कहा गया है कि ब्रह्म को तत्व से जानने वाला जल से परिपूर्ण विशाल जलाशय को प्राप्त करने वाला और वेदों का कर्मकाण्ड छोटे जलाशय के समान है। अतः हे अर्जुन 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' तुम्हारा कर्म करने में ही अधिकार है उसके फल में नहीं। इसलिए न तो तू कर्मों के फल का हेतु बन और न ही कर्म से विमुख हो, आसक्ति को छोड़ कर सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित होकर अपने कर्त्तव्य कर्मो को कर, कर्म के करने, पूर्ण होने, न होने और उसके फल में समत्व ही योग कहलाता है। समत्व योग द्वारा समबुद्धि युक्त जन इसी लोक में पाप और पुण्य को त्याग देता है और उनसे मुक्त हो जाता है, यह समत्व रूप योग ही कर्मों में कुशलता है और कर्म के बन्धन मुक्ति का उपाय है। ''योगः कर्मसु कौशलम्''। समबुद्धि मनुष्य निर्विकार पद को प्राप्त करके सभी लोक परलोक के भोगों से वैराग्य को प्राप्त कर लेते हैं। तू भी जब परमात्मा में अचल और स्थिर बुद्धि वाला हो जाएगा तब तू योग को प्राप्त हो जायेगा।

5 स्थिर बुद्धि पुरुष के लक्षण तथा महिमा :– श्लोक 54 से 72 तक स्थिर बुद्धि पुरुष के लक्षण और उसकी महिमा का वर्णन किया गया है। अर्जुन जब स्थिर बुद्धि पुरुष के लक्षण तथा उसके व्यवहार के बारे में पूछते हैं श्री कृष्ण कहते हैं कि जब मनुष्य मन की सभी कामनाओं को छोड़कर आत्मा से आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है। उस समय में ही वह स्थित प्रज्ञ है और अधिक विस्तार से बतलाते हुए कहते हैं कि जब मनुष्य सदा किसी भी प्रकार की वस्तु को पाकर प्रसन्न और दुःखी नहीं होता, वही स्थिर बुद्धि है। इस प्रकार के मनुष्यों की आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके लौट जाती है। इन्द्रियों को वश में करने वाले मनुष्य की ही बुद्धि स्थिर होती है अन्यथा आसक्ति के कारण इन्द्रियां पुनः मन को भी बलात् हर लेती हैं। मन और इन्द्रियों के कर्म का वर्णन करते हुए श्री कृष्ण कहते हैं कि विष चिन्तन से आसक्ति, आसक्ति से कामना, कामना पूर्ति में विघ्न पड़ने पर क्रोध, क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से स्मृति भ्रम, बुद्धि विनाश और तत्पश्चात् अपनी स्थिति से पतन हो जाता है। परन्तु जो साधक अपने मन को वश में कर लेता है उसकी इन्द्रियां राग–द्वेष से रहित आचरण करती हुई अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्रदान करती हैं। इस प्रकार बुद्धि केवल परमात्मा में ही स्थिर हो जाती है। अशान्त मनुष्य बुद्धिहीन होकर दुःखी रहता है और स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य सुखी रहता है। स्थित प्रज्ञ योगी समुद्र के समान अविचल और शान्त हो जाता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़ कर विकार रहित होकर परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है। हे अर्जुन ! यह ब्रह्म को प्राप्त हुए मनुष्य की स्थिति है जिसमें स्थित हुआ योगी ब्रह्मानन्द को प्राप्त करता है।

2.5.3 रघुवंशम् (द्वितीय सर्ग)

द्वितीय सर्ग में कथानक ''प्राप्त्याशा'' और ''फलागम'' की ओर उन्मुख ''यत्न' नामक अवस्था से युक्त है। नृप दिलीप और रानी सुदक्षिणा व्रतपालन व गोसेवा में तत्पर हैं। उनकी सेना, सेवक आदि कोई भी वहाँ उपस्थित नहीं, क्योंकि ''स्ववीर्य–गुप्ता हि मनोः प्रसूतिः'' इस साधारणीकरण से नृप व राज्ञी की गोसेवा नाना चेष्टाओं– क्रियाओं से मंडित है – सेवा के लिए निष्ठा की अपेक्षा होती है। निष्ठा श्रद्धा से आती है। नृप और रानी ने सम्पूर्ण निष्ठा और श्रद्धा से गौ सेवा के पथ का अनुगमन किया जैसे ''श्रुतेरिवार्थं स्मृतरन्वगच्छत्'' गोसेवा करने के प्रसंग में गौ की छोटी–छोटी क्रियाएँ व नृप की सेवा सब का वर्णन सुन्दर उपमाओं से मंडित कर चित्रण किया गया है। प्रतिदिन वन में गौ चराने जाते हुए नृपति के व्यक्तित्व का अंकन करते हुए कवि ने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व ही उसे गौरव प्रदान करता है, चाहे वह राजमहल में हो या एकान्त वन में – नृप दिलीप के पार्श्ववर्त्ती अनुचर वृन्द के न होने पर भी पक्षियों का कलरव जयगान की भाँति, गिरते हुए पुष्प नगर की मांगलिक पुष्प वर्षा–सी, जंगली बाँसों के झुरमुट से उत्पन्न होती हुई ध्वनि राजा के यशोगान–सी, ठण्डे झरनों के जल से युक्त वायु सब मानों दिलीप के अनुचर हो गए। नंदिनी के चलने पर राजा चलते थे, बैठने पर बैठते थे, पानी पीने पर स्वयं जल पीते थे – अर्थात् सर्वदा छायावत् गोसेवा में लगे रहते थे। आश्रम लौट आने पर पति–पत्नी दोनों मिलकर गोसेवा के अवशिष्ठ कार्यों को करते थे। इसी प्रकार गोसेवा करते हुए इक्कीस दिवस बीत गए। प्रत्येक तप

की परीक्षा होती है। परीक्षा ही तो हमारी साधना में परिपक्वता लाती है। नन्दिनी भी परीक्षा के निमित्त एक दिन गिरि–कन्दरा में प्रवेश कर गई। वहाँ माया–निर्मित हिंस सिंह ने नन्दिनी को खाने के लिए दबोच लिया। निमेष मात्र में ही सब घटित हुआ।

गौ के आर्त्तनाद से दयार्द्र हो नृप गोरक्षार्थ सन्नद्ध होते हैं, किन्तु मंत्र–मोहित से नृप का हाथ धनुष और बाण से युक्त निष्क्रिय हो जड़वत् हो जाता है। लाख चेष्टा करने पर भी नृप बाण चलाने में असमर्थ हो चकित हैं कि सिंह मानवोचित वार्णः में कथन आरम्भ करता है। बहुत देर तक यह वार्ता चलती है जो महाकाव्य में कथोप–कथन का नवीन पुट देते हुए पाठक को अभिभूत करती है। सिंह अपना परिचय देता है। तत्पश्चात् भोज्य सामग्री के रूप में गौ को खाकर जीवन निर्वाह की बातें कहता है। नृप सिंह को स्पष्ट करते हैं कि वे क्षत्रिय का अर्थ है ''क्षतात्किल त्रायत दत्युदग्रः''। अतः गौ की रक्षा करना उनका विहित कर्म है। गौ के स्थान पर भोज्य पदार्थ के रूप में नृप अपना शरीर अर्पित करने को तत्पर हो जाते हैं। सिंह बार–बार विभिन्न उद्धरणों से उन्हें (नृप) को इस दुःसाहस से रोकता है किन्तु नृप को पंचभूत से बने शरीर के लिए आग्रह नहीं और वे आत्मदान के लिए नतसिर उद्यत हो जाते हैं। गौ के लिए नृप का आत्मदान स्तुत्य है। मायासिंह विलीन हो जाता है; नन्दिनी श्रद्धा और निष्ठा को सत्य व प्रामाणिक पाती है। साधना और प्रवास की समाप्ति होती है। वसिष्ठ ऋषि नृप को करणीय निर्देश देते हैं और नृप राज्ञी के साथ नवीन चंद्र–से सुशोभित होते हुए अयोध्या नगरी में लौट आते हैं।

2.6 मुख्य शब्दावली

तपःस्वाध्याय–निरतम् – तप और स्वाध्याय में लगे हुए

दशवर्षसहस्राणि – दस हजार वर्ष तक

भारत – हे भरतवंशी अर्जुन

कर्मफलहेतुः – कर्मों के फल में वासना वाला

यशोधनः – जिसका धन, यश है वह

2.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1 महर्षि वाल्मीकि

2 सात काण्ड

3 18

4 कालिदास की

5 19 सर्ग

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1 रामायण के सांस्कृतिक महत्त्व का विश्लेषण कीजिए।

2 रामायण के बालकाण्ड के प्रथम सर्ग का सार लिखिए।

3 श्रीमद्भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोग की समीक्षा कीजिए।

4 श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय का सार लिखिए।

5 रघुवंश की काव्यगतविशेषताओं का विवेचन कीजिए।

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1 रामायण – महर्षि वाल्मीकि, गीता प्रेस, गोरखपुर।

2 श्रीमद्भगवद्गीता, व्याख्याकार – जयदयाल गोयन्दका, गीता प्रेस, गोरखपुर।

3 श्रीमद्भगवद्गीता, साधक–संजीवनी (परिशिष्टसहित) व्याख्याकार – स्वामी रामसुखदास, गीता प्रेस, गोरखपुर।

4 रघुवंशम् – महाकवि कालिदास, व्याख्याकार – शेषराज शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

5 संस्कृत–हिन्दी कोष – वामन शिवराम आप्टे, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी।